सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 : अंक : 02
मई 2022

प्रकाशन तिथि : 01.05.2022

मूल्य - एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृत-कण

आददीत परां विद्यां प्रयत्नादवरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

(महर्षि मनु)

अर्थात् स्त्री रत्न को भले ही वह कुलीन न हो, अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो और नीच व्यक्ति की सेवा करके उससे भी श्रेष्ठ विद्या सीखने का प्रयत्न करो। चाण्डाल द्वारा भी श्रेष्ठ धर्म की शिक्षा ग्रहण करो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतेषु चात्मनं सर्वभूतानि चात्मनि।
समं पश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति।।

(मनुस्मृति 12/91)

अर्थात् सम्पूर्ण चराचर जीवों में आत्मा को तथा आत्मा में सम्पूर्ण जीवों को देखता हुआ आत्मयाजी (ब्रह्मार्पण न्याय से ज्योतिष्टोमादि करने वाला) ब्रह्मत्व अर्थात् मुक्ति को पाता है।

◆ ◆ ◆

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं।
व्यापारैर्बहु कार्यभार गुरुभिर्कालो न विज्ञायते।।
ज्ञात्वा जन्म-जरा-विपत्ति-मरणं त्रासश्च नोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयीं प्रमाद मदिरां उन्मत्तभूतं जगत।।

(भर्तृहरि)

रोज-रोज सूर्य के निकलने और छिप जाने से आयु का एक-एक दिन क्षीण होता जा रहा है। व्यापार और कार्यभार की अधिकता से समय का ज्ञान नहीं हो पाता। रोज-रोज मनुष्य जरा जन्म-मरण की सूचनायें पाता रहता है किन्तु फिर भी मन में कुछ भय उत्पन्न नहीं होता, वह मोहमयी प्रमाद मदिरा को पी कर पागल सा हुआ घूम रहा है। यही कारण है कि अत्यन्त दुर्लभ मनुष्य जन्म, मदान्धों की तरह बीतता चला जा रहा है, किन्तु इसकी दुर्लभता की चेतावनी का स्मरण किसी को नहीं हो पाता।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 मई 2022 अंक : 02

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथ्वी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे
दुहां धेनुरनपस्फुरन्ती।।

अनेक प्रकार से विभिन्न भाषा बोलने वाले और विविधा धर्मों को मानने वाले लोगों को एक परिवार के तुल्य धारण करने वाली पृथ्वी निश्चल एवं शान्त-स्थिर गाय की तरह मुझे ऐश्वर्य की सहस्त्रों धारायें प्रदान करें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	7
3.	गुरु-सेवा - डॉ. विजय सिंह	9
4.	तत्व विजयी भव - जगदीश राय बंसल	12
5.	सिद्ध लोक - डॉ. श्री बालमुकुन्द	16
6.	योग तथा उसका महत्व - श्री जितेन्द्र बहादुर परमार्थी	21
7.	कुराने में प्रथम योग-प्रचार कार्यक्रम- श्री अशोक शर्मा	25
8.	अवतार दिवस पर विशेष - वेदव्रत द्विवेदी	27
9.	यौगिक प्रश्नोत्तरी - पूज्य श्री गुरुदेव जी	28
10.	दुर्लभ दर्शन - डॉ. रवीन्द्र कुमार	37
11.	प्रभु ! पार उतार मुझे - श्री आर.बी. श्रीवास्तव	40

एक प्रति	: रु.	20.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	215.00
द्विवार्षिक	: रु.	400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	1200.00

हमारा विशेष लेख–

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

षटचक्रों के अन्दर मणिपूरक नामक नाभि का चक्र है। मणिपूरक चक्र का स्थान नाभिमण्डल है। नाभिमण्डल ही वीर्याशय यानी वीर्य का स्थान है। मनुष्य के मन में जब किसी प्रकार की काम–वासना का उदय होता है तो कामाग्नि की ऊष्णता से वीर्य सारे शरीर से आकर्षित होकर स्खलन की ओर जाता है। आयुर्वेद के परमाचार्य श्री वागभट्ट ने वीर्य को वपुसार, जीवनाश्रय, गर्भबीज आदि नामों से उद्घोषित किया है। जैसे:–

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलं पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।।

अतः इसका सारे शरीर में व्यापक रहना जीवधारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं, खट्टे–मीठे पदार्थ खाते रहते हैं, उनके मन में काम–वासना बढ़ती रहा करती है। खाली बैठे रहने से मन में कुभावनायें आती हैं और शनैः शनैः कुकर्म–चेष्टायें बढ़ने लगती हैं, जिससे मनुष्य उन्नति के लिए प्राप्त हुए अपने पवित्र जीवन को पतन की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए वीर्य को ऊर्ध्वरेतस बनाने के लिए साधक को पहले ऐसा प्रयत्न कर लेना चाहिए कि वपुसार जीवनाश्रय वीर्य को सारे शरीर में व्यापक कर डाले। वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य व्यायाम की आदत डाले। व्यायाम करने के जितने प्रकार आज भारत व दूसरे देशों में प्रचलित हैं वे सब मनुष्यकृत होने के नाते अधिक लाभदायक नहीं हैं। ऐसे सभी व्यायाम शारीरिक जड़ता के दाता हैं। ये वीर्य को शरीर में व्यापक तो बनाते हैं किन्तु उसका प्रभाव सभी अंगों पर समान रूप से नहीं पड़ता। स्नायु कहीं–कहीं तो बहुत ही दृढ़ हो जाते हैं जिससे सारे शरीर में रस व रक्त का समान रूप से वहन नहीं हो पाता। जो व्यायाम हमारे पूर्वज योगाचार्यों ने अपने ग्रंथ में लिखे हैं वे सभी उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की उत्तम देन हैं और ये सभी व्यायाम स्नायु–मण्डल को कोमल, रस व रक्त का ठीक तरह से वहन करने वाले बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता के दाता हैं, अतः शरीर को नीरोग, हल्का, फुर्तीला ओज–तेज प्रधान एवं वीर्य को शरीर को व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। जो लोग किसी योग शिक्षण केन्द्र में जाकर नियमानुवर्तिता से योगासनों का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कामोद्दीपक भावनायें स्वतः ही शान्त होने लगती हैं तथा मन आत्म–चिन्तन की ओर बढ़ने लगता है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है, किन्तु वीर्य को शरीर में व्यापक बनाये रखने के लिए उदर–सम्बन्धी आसनों का अभ्यास बहुत ही आवश्यक हो जाता है।

जैसेः— उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, नावासन, नाभ्यासन, धनुरासन, शलभासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन आदि। ये सभी आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले हैं। योग शिक्षण केन्द्रों में सभी आसन नियमानुसार कराये जाते हैं। अभ्यासी लोग पहले खड़े होने के आसन करते हैं उसके बाद बैठने–लेटने के आदि क्रमानुसार करते हैं।

उपरोक्त विधि के अनुसार वीर्य शरीर में व्यापक तो हो ही जायेगा, किन्तु ऊर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिए कुछ खास–खास अभ्यास हैं जिनका दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे हैं।

हमारे योगाचार्यों ने 'सिद्धासन' को सर्व सिद्धियों का दाता बतलाया है। 'सिद्धासन' की एक विशेषता यह है कि उसके करने से मनुष्य स्वाभाविक ही संयतेन्द्रिय बन जाता है क्योंकि सिद्धासन लगाने से वीर्यवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाती है और उस नाड़ी के दब जाने से वीर्य का अधोवेग रूककर ऊर्ध्ववेग बन जाता है। 'सिद्धासन' का प्रकार योगाचार्य भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में इस प्रकार बतलाया है:–

योनिं संपीड्य यत्नेन पाद मूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत योगवित्सदा।।
ऊर्ध्व निरीक्ष्य भ्रमूध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेषोऽवक्राश्च रहस्युद्वेगवर्जितः।।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्।

अर्थात्– अपने बायें पैर की एड़ी को अण्डकोषों के नीचे योनिस्थान में (जिसको सींवनी कहते हैं) ले जाकर दृढ़ता के साथ जमा दो। पीछे गुदाद्वार के नीचे कोई कपड़ा या कपड़े की साधारण सी गद्दी रख दो जिससे लिंगनाल को दबाने में वह गद्दी सहायक हो जाये। इस प्रकार बायें पैर की एड़ी को योनिस्थान में दृढ़ता से जमाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिंगनाल के ऊपर जमाकर रखो। दोनों पैरों के टखने परस्पर मिले हुए हों। एक पैर लिंगेन्द्रिय के नीचे योनिस्थान में हो और दूसरा लिंगेन्द्रिय के ऊपर जमा हुआ हो। इस विधि से बैठ जाओ। अपने मेरूदण्ड को सीधा रखो। दोनों हाथों को तनाव के साथ घुटनों पर रखो एवं दृष्टि को भ्रूमध्य में ले जाओ, दृष्टि थोड़ी सी झुकी हुई हो। मन में कोई भी उद्वेग न हो। इसको योगाचार्यों ने सिद्धासन कहा है।

जो लोग केवलमात्र सिद्धासन का अभ्यास करते रहते हैं उनके भी मनोविकार शांत हो जाते हैं और वीर्य की अधोगति रूक करके वेग ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

इसके साथ एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करो। अपने प्राणवायु को वेग के साथ बाहर निकाल दो। उड्डियान बंध के साथ आधार चक्र को ऊपर की ओर खींचो और प्राणवायु को रोक दो। आधार चक्र खींचे रहो। अपने मन में धारणा करो कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहा हूँ। अनुभवी सन्तों ने इस प्राणायाम में लिंगेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचने की भी

विधि लिखी है, किन्तु नाभिमण्डल से नीचे की नाड़ियों को अपने हाथ की हथेली से तनाव देकर रखोगे तो भी परिणाम वही निकलेगा। अपने पेट की वायु को बाहर निकाल देने पर उसको यथाशक्ति बाहर रोके रहना चाहिए। जब घबराहट मालूम पड़े तब धीरे–धीरे उस वायु को अन्दर ले लो, किन्तु अन्दर रोकने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वर्षों तक योग साधक यदि इस प्राणायाम को करता रहता है तो वह अवश्य ही ऊर्ध्वरेतस बन जाता है। उसका वीर्य ऊर्ध्वगमन करने लगता है और वह बिन्दुजय कर लेता है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले।

अर्थात्–बिन्दुजय प्राप्त करने के बाद ऐसा कोई साधन नहीं जिसको मनुष्य न कर सके। योगदर्शन में ब्रह्मचर्य–प्रतिष्ठा का फल बतलाया है:–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभ:।

यस्य लाभादप्रतिघात् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनियेषु ज्ञानमाधतुं समर्थो भवतीति।

अर्थात्–इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करने से योगी अपने शरीर में अलौकिक गुणों का आकर्षण कर लेता है और शनैः शनैः उसका मन–बुद्धि का इतना ऊँचा विकास हो जाता है कि उसे अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति संचार करने की योग्यता आ जाती है। इसलिए उपरोक्त साधनाओं द्वारा साधक को अपने आपको ऊर्ध्वरेतस बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यान्य योग साधनों में शक्तिचालिनी मुद्रा जो बज्रासन के अभ्यास से की जाती है वह भी ऊर्ध्वरेतसता की जननी है। शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्दर विपरीत पाद बज्रासन लगा करके भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण एवं वीर्य का ऊर्ध्वकर्षण अनायास ही होता है।

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वरेतसता

शीर्षासन हमारे योगाचार्यो की अमर देन है इसको विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में भी बतलाया गया है। जो लोग नियम से विधिपूर्वक शीर्षासन का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य भी ऊर्ध्वगमन करने लगता है किन्तु शीर्षासन के अभ्यासियों को चाहिए कि इस विपरीतकरणी मुद्रा को किन्हीं योग–शिक्षण केन्द्रों में आकर सीखें। शीर्षासन के अभ्यासी लोगों को मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग जिसे कपाल कहते हैं, वही जमीन पर लगाना चाहिए और अपने आहार का ख्याल रखना चाहिए। इसके अभ्यास के शास्त्रीय लेख है।

अध: शिरश्चोर्ध्वपाद: क्षणं स्यात्प्रथमे दिने।
क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।।
वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्व न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित्।।

अर्थात्–पहले दिन एक क्षण के लिए शीर्षासन करना चाहिए। दूसरे दिन एक क्षण से कुछ अधिक बढ़ाये। इस प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते महिने भर में दो–तीन मिनट तक ही बढ़ाना

चाहिए। शीर्षासन के अभ्यासी योगी को भूखा नहीं रहना चाहिए।

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।
आहारो बहुलस्तस्य सपाद्य: साधकस्य च।।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।

अर्थात्–जो साधक शीर्षासन का अभ्यास करता है उसकी उत्तरोत्तर जठराग्नि बढ़ती चली जाती है। इसलिए खान–पान में उसको संकोच नहीं करना चाहिए और न किसी प्रकार का व्रतादि करना चाहिए। क्योंकि यदि शीर्षासन का अभ्यासी अल्पाहार होगा तो उसकी जठराग्नि स्वयं उसका दहन कर देगी। शीर्षासन करने वाले साधक को भी अपने अभ्यास काल में यह धारणा करते रहना चाहिए कि मैं अपने वीर्य को नाभिमण्डल से ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। नाभि–मण्डल के नीचे के भाग को ऊर्ध्वकर्षण करने से साधक अवश्य ही ऊर्ध्वरेतसता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ जिन क्रियाओं का संकेत किया गया है उन सबको साधक को समझकर करना चाहिए। यदि विधि पूरी तरह समझ में न आ सके तो अवश्य योग–शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करके ही इन क्रियाओं को करना चाहिए जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें।

कैसे उद्धार कर पाओगे? अनाथो के नाथ जी!

प्रेषक–कुन्दनलाल अग्रवाल रूद्रपुर, ऊधम सिंह नगर

ब्योधि औ अजामिल से ज्यादा हूँ असाधु नाथ,
मेरे ढेर पापों का न प्रभु पार पाओगे।
शबरी न केवट, न शूद्र और अहिल्या हूँ मैं,
जो कि दे के प्यार, धर पैर तार जाओगे।
ग्राह से भी अधिक गुनाह है हमारे प्रभु,
गिन–गिन करके ही आप हार जाओगे।
त्यागा सती सीता को भी, झूठे ही कलंक पै तो,
कैसे तुम 'दीन' का उद्धार कर पाओगे।

दास हूँ मैं पतितों का महापातकी हूँ नाथ,
कैसे भवसागर से पार कर पाओगे।
अधम से अधम महान नीच हूँ मैं नाथ,
कैसे अपराधी का सुधार कर पाओगे।
पाप का जीवन में करता सदैव रहा,
कैसे आप मेरा उपकार कर पाओगे।
इस बार कठिन परिस्थिति का सामना है,
देखें किस भाँति से उद्धार कर पाओगे।

सम्पादकीय–

दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 134 वाँ प्राकट्योत्सव धूम–धाम से सम्पन्न

आचार्य (डा०) दासलाल शर्मा

श्री प्रभु जी का 134 वाँ प्राकट्य उत्सव श्री सिद्धगुफा सवाई धाम में अत्यन्त हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाया गया। यह उत्सव 8,9 एवं 10 अप्रैल तक मनाया गया। दो वर्ष के कोरोना काल खण्ड में यह उत्सव धूम–धाम से नहीं मनाया जा सका था। इस वर्ष यह उत्सव तीन दिन तक उल्लास के साथ मनाया गया। 8 एवं 9 अप्रैल को प्रातः की सामूहिक आरती के पश्चात गुरु–गीता का पाठ परम्परागत रूप से कराया गया। पाठ के पश्चात विद्वान साधकों के द्वारा गुरु तत्व पर व्याख्यान हुये। प्रमुख वक्ताओं में सवाई धाम के आचार्य श्री दासलाल जी महाराज, दिल्ली से पधारे डॉ. मनमोहन कृष्ण त्रिखा एवं देवेन्द ब्रह्मचारी एवं इन्दौर से पधारे वरिष्ठ साधक अवकाश प्राप्त जिला जज श्री. आर.के. गोस्वामी जी के व्याख्यान हुये।

अपने दबोधन में आचार्य जी ने गुरु गीता का महत्वपूर्ण श्लोक ' गरौ संतोषिते सर्वे ' की विशद व्याख्या करते हुये कहा कि गुरुदेव के संतोष मात्र से ही शिष्य का कल्याण हुआ करता है। भगवान शिव एवं भगवती पार्वती के पवित्र संवाद के रूप में कहे गये श्लोक–

गुरौ संतोषिते सर्वे, मुक्तास्ते नात्र संशयः

भुक्ति मुक्त्युदयस्तेषां कराग्रे वर्तते सदा।

की विशेष व्याख्या की गई। गुरु के सन्तुष्ट होने पर सभी सिद्ध व साधक मुक्त हुये हैं। इसमें संशय नही है। भोग, मोक्ष एवं ऐश्वर्य सदा उन्हें प्राप्त हो जाता है। गुरुगीता में कहा है। गुरु ही देव हैं।, गुरुधर्म है और गुरु सेवा ही साधक का परम तप है। गुरु से श्रेष्ठ कोई नहीं है। हे वरानने ! यह सत्य है सत्य है। ऐसा भगवान शिव ने उपदेश में कहा है। आगे भी कहा है –

गुरु सेवा परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।

सर्वतीर्थानि देवेशि, सद्गुरोश्चरणाब्जे।।

अर्थात् – गुरु सेवा परम तीर्थ है अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। सदगुरु के चरण कमलों में सभी तीर्थों का वास रहता है। गुरु सेवा परम तीर्थ है इसका तात्पर्य है कि गुरुदेव की सेवा करने से समस्त तीर्थों के दर्शन व सेवन का फल स्वतः मिल जाता है। गुरु सेवा करना बहुत कठिन कार्य है। जहाँ पर गुरु के कई अन्तेवासी शिष्य रहते हैं, वहाँ पर राग–द्वेष का होना स्वाभाविक है! हर कोई गुरु का प्रिय तो बनना चाहता है किन्तु त्याग,तप एवं सहनशीलता के अभाव में वह सर्वप्रिय नही बन पाता इसलिये राग–द्वेष का वातावरण रहता है जो गुरु को सन्तुष्ट करने में बाधा बन जाती है, इसीलिये कहा गया है –

सेवा धर्मो परम गहनः योगिनामप्यगम्यः

सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है योगी लोग भी गुरु की सेवा के महत्व को समझ नही पाते

और सेवा का फल प्राप्त नहीं कर पाते।

गुरुगीता का उपदेश मुख्य रूप से सिद्धयोग का ही उपदेश है। इस उपदेश को पाकर जो शिष्य गुरु सेवा में सफलता प्राप्त कर लेता है वही सेवा का फल पाता है जो अत्यन्त दुर्लभ व कठिन है तथा दुःसाध्य भी है। सिद्धयोग परम्परा में गुरुकृपा से शिष्य शीघ्र ही तत्वज्ञान को पा लेता है। एक अन्य श्लोक में ही गुरु भक्ति से ज्ञान प्राप्ति का संकेत मिलता है यही श्लोक उपनिषदों में भी है।

यस्य देवे पराभक्तिः यथा देवे तथा गुरौ,

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः

अर्थात् जिस साधक की इष्टदेव में पराभक्ति है और वैसी ही भक्ति गुरुदेव में है तो उसे महापुरुषों के वाक्य महावाक्यों के अर्थ प्रकाशित हो जाते हैं अर्थात् [illegible] का साक्षात्कार हो जाता है। श्री मद्भागवद् महापुराण में भी उद्धव को भगवान ने उपदेश देते हुये कहा है कि गुरुदेव की ही उपासना करनी चाहिये क्योंकि– **' सर्व देव मयो गुरुः '** गुरुदेव में सभी देवताओं का वास होता है।

श्री सिद्धगुफा आश्रम में इस बार भी भागवत्–चिन्तन का सप्ताह रखा गया था जिसमें विदुषी रक्मिणी देवी द्वारा कथा का विस्तार किया गया जो उत्साह वर्धक एवं रोचक रहा।

10 अप्रैल को विशाल ब्रह्मभोज एवं भण्डारा के साथ उत्सव सम्पन्न हुआ इसे पचासों वर्षों से ' योग महामेला ' के रूप में मनाते आये है। यह योगमय कार्यक्रम रहता है। योग आसन व अन्य षटकर्म की क्रियाओं का प्रदर्शन किया गया। सूत्र नेति, जलनेति कुञ्जल आदि की क्रियाएँ दिखाई गई। इस प्रकार से 11 अप्रैल से भक्तों की विदाई होने लगी। इस वर्ष काफी संख्या में लोग आये थे और खुशी–खुशी अपने घरों की ओर प्रस्थान किया। इस प्रकार यह उत्सव हर्ष व उल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। सभी प्रसन्न चित्त होकर गुरु चरणों की छवि को हृदय में धारण करते हुए अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े।

जय गुरुदेव जी की !

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरु-सेवा

डॉ. विजय सिंह, गणित प्रवक्ता, सेण्ट ऐण्ड्रयूज महाविद्यालय, गोरखपुर

योगानुभूतियों को प्राप्त करने के लिये सभी ने सद्गुरु-कृपा की अपरिहार्यता को स्वीकार किया है। ज्ञानमार्गीय आचार्य गण हों, भक्ति मार्गीय संत गण हों अथवा योग के भिन्न-भिन्न पंथों के योगीगण हों, सब ने सद्गुरु-सेवा से सहज साधना प्रगति ही नहीं अपितु परमलक्ष्य की पल मात्र में उपलब्धि का विवरण दिया है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में स्पष्टतः बताया है कि ब्रह्मोपलब्धि हेतु व्यक्ति को तत्वदर्शी सिद्ध की शरण में जाकर उनकी सेवा करते हुए, उनको प्रसन्न करके अध्यात्म जिज्ञासा करना चाहिए। तभी वह तत्व प्राप्त होगा-

तत् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

" प्रणिपातेन " शब्द में ही शिष्य की मनोभावना सद्गुरु के प्रति कैसी होनी चाहिए, बताया गया है। प्रणिपात का शाब्दिक भाव तो दण्डवत् प्रणाम से है परन्तु यहाँ इसका अर्थ पूर्ण शरणागति से समझना चाहिये। सेवा तभी बन पायेगी जब हमारे मन में शरणागति भाव को ग्रहण कर लिया है अन्यथा यदि शिष्य के अन्दर अपना अहं शेष है तो सेवा बन ही नहीं सकती। कुछ न कुछ छल-कपट, अहं चित्त में रहेगा ही। अर्थात् अन्तर्यामी सदगुरु की सेवा ऐसे दोष युक्त मन से नहीं हो पायेगी।

एक बात स्पष्ट रूप से कह दूँ। जो गुरु सेवा करते हैं उनकी सारी साधना गुरु-सेवा ही है। उन्हें बन्ध, मुद्रा आसन-प्राणायाम-ध्यान धारणा की कोई आवश्यकता बाह्य रूप से करने की नहीं है। सद्गुरु कृपा से पल मात्र में ऐसे भाग्यवान साधकों को अध्यात्म राज्य का सारा प्रसाद, प्राप्त हो जाया करता है। भारतीय धर्म शास्त्रों में, पुराणों में ऐसे उदाहरण अनेक भरे पड़े है। सत्यकाम, आरुणी, उद्दालक, संत तुकाराम ने कैसे योग की पराकाष्ठा को प्राप्त किया यह हम सभी सिद्धयोग की साधना करने वालों को जानना नितांत आवश्यक है। सद्गुरु-सेवा से, साकार ब्रह्मरूप सतगुरु का सतत् चिन्तन, उनके देहभाव की चित् में स्फुरणा तथा उनकी अहैतकी कृपा, मनोजगत का प्राच्छालन सहज ही होने लगता है। परिणामः स्वरूप समाधि आकस्मिक रूप से साधक को प्राप्त हो जाती है। सेवा सधते ही सदगुरु सेवी को गुरुकृपा से बोध होने लगता है कि यह अधिभूत यह अधिदेव और अध्यात्म सद्गुरु शक्ति का ही सतत् प्रवाहमान क्रीड़ाक्षेत्र है। संसार को सर्वभावेन वह सदगुरु तत्व रूप में दर्शन करने लगता है। ऐसा भाग्यवान गुरु-सेवी शिष्य सर्वथा गुरु रूप ही हो जाता है। कुछ दृष्टान्त देखें-

सत्यकाम अपने गुरुदेव से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने जाता है। सद्गुरु कुछ गायें-बछड़े सत्यकाम को देते हुये आज्ञा करते हैं- तुम इन्हें लेकर अरण्य में चले जाओ, जहाँ इनके

चारे–पानी की असुविधा न हो। इतना ध्यान रखना जब इनकी संख्या 1000 हो जावे तो मेरे पास लौट आना। समर्पित शिष्य यह जानता है कि सद्गुरु अपनी कठिनतम आज्ञा को पालन करने की शक्ति भी गुप्त रूप से प्रदान करते हैं। जंगल के हिंसक पशुओं, नाना बाधाओं से सदगुरु–प्रेम पूरित आत्म–शक्ति से सत्यकाम जूझता है– सफल होकर काला–वधि से जब पशुओं की संख्या 1000 हो जाती है तब वह सदगुरु के समक्ष उपस्थित होता है, उसके कार्य की महानता से प्रभावित प्रसन्नवदन गुरुदेव की यह कृपाकटाक्ष सत्यकाम को आतृप्त बना देता है।

भगवान शंकराचार्य के पास एक निरक्षर भट्टाचार्य शिष्य आता है चुपचाप वह दीक्षा प्राप्त कर आचार्य की सेवा में लग जाता है। बड़ी दक्षता से वह छोटे से छोटे कार्य को भी पूर्ण मनोयोग से करता है। वह अपने आचार्य की ओर देखता रहता है वचन निकलने की देरी, वह कार्य को अन्जाम देता है। किसी दिन आचार्य वेदान्त के गहन विषय पर अपने एक से एक ज्ञानवृद्ध शिष्यों को कुछ विशेष बताने वाले हैं। प्रवचन प्रारम्भ करने का समय व्यतीत होता जा रहा है वृक्ष की शीतल छाया में मंचासीन आचार्य निस्तब्ध–बैठे हुये कभी–कभी किसी और मण्डलाकृत बैठे अपने शिष्यों को देखते हैं। किसी की खोज में हैं। समय व्यतीत होता रहा। अनुशासित शिष्य यह भी नहीं पूछते प्रभो ! किस बात का इंतजार है। तभी सेवा कार्य से निवृत हो वह निरक्षरभट्टाचार्य सेवक टोटक सबसे पीछे शांत–भाव से आकर बैठ जाता है। आचार्य प्रसन्न बदन अपनी वाग्धारा प्रवाहित करने लगे। उस दिन बड़ा ही अपूर्व ज्ञान–दान हुआ। विद्वान बूढ़े शिष्य अपने कुमारवय आचार्य के ज्ञान से मंत्र मुग्ध हो उठे। कितनी गूढ़ तत्वों की व्याख्या आचार्य ने आज की है। फिर एक शिष्य के मन में गुरु के आज के व्यवहार की विचित्रता उलझी हुई थी। उसने पूछा भगवन ! आपने आज जो सारगर्भित प्रवचन किया है उसको प्रारम्भ तभी किया जब हमारा भाई टोटक आगया, इसका क्या रहस्य है। वह इन तात्विक व्याकरण बोध–गर्भित बातों को कितना समझा होगा। भगवान शंकराचार्य ने शिष्यों के अर्न्तभाव में निहित अहं–भाव को ही तो उखाड़ने एवं अपने प्रति समर्पित शिष्य को कृत्यकृत्य करने के लिये ही यह चरित्र रचा था। टोटक को बुलाकर प्यार जताते हुये बोले– तुम बड़ी एकाग्रता के साथ मेरे मुख को ही देखते हुये मेरा प्रवचन सुनते रहे। कहो तो तुम, मैंने आज क्या उपदेश किया। धन्य हैं प्रभु ! टोटक ने प्रवचन गुरुवाणी में ही दुहरा दिया। सभी शिष्य चकित रह गये। ऐसी महिमा गुरु–सेवा की है। **मूकं करोति वाचकं, पंगुं लंघ्यति गिरिम्।** " टोटक को उसी दिन टोटकाचार्य नाम से आचार्य ने विभूषित किया। भगवान शंकराचार्य के चार प्रमुख शिष्यों में से, यह ये एक थे।

गुरु–सेवा एवं साधना में मूलभूत अन्तर क्या है ? साधना में साधक का पुरुषार्थ फलीभूत होता है वहीं गुरु–सेवा में साधक का आत्म समर्पणभाव। गुरु–सेवा में सब कुछ सद्गुरु पर छोड़ दिया जाता है। इस तथ्य को ब्राह्मण एवं अघोरी की कथा से स्पष्टतः समझ लेना चाहिये। कैसे वह वृद्ध ब्राह्मण आनन्दकन्द श्री महाप्रभुजी की सेवा में दैन्य भाव से सदा विनम्रता पूर्वक लगा रहता था। श्रीमहाप्रभु जी कहते भी थे – ब्राह्मण ! तुम अन्य साधकों की तरह ध्यान में क्यों नहीं बैठते। वह चुप रह जाता था। उसे सेवा में ही ध्यान से भी बढ़कर आनन्दाभास होता था। अन्य साधक कैसे ईर्षावश उसे चिढ़ाकर जंगल में कन्द लाने वहाँ भेज दिये जहाँ अघोरी का वास था। अघोरी ने प्रत्यक्ष होकर उस सेवक ब्राह्मण को खा जाना चाहा परन्तु सफल न हो सका। प्रत्यक्ष भगवान सदाशिव रूप श्री महाप्रभु जी को उसका रखवाला

देख कर वह अघोरी स्वयं भयभीत हो गया। उस अघोरी ने बलात् बाचा सिद्धि वरदान ब्राह्मण को दे दिया। (कितनों को यह बाचा सिद्धि साधना द्वारा प्राप्त होती है)। ब्राह्मण देव ने इस बाचा सिद्धि वरदान को भार स्वरूप, पाप–पुण्य का प्रदाता समझा। अत: जब उसने अपना शरीर ही त्याग देना चाहा उस समय श्री सद्गुरु देव ने क्या कहा ब्राह्मण ! तू तो सब कुछ मेरे लिये ही करता रहा है। फिर व्यर्थ की शंका से डरकर क्यों शरीर त्यागते हो। वह सिद्धि वरदान तुम मुझ में समर्पण कर दो।

अत: गुरु–सेवा का खुला अर्थ है– साधक अपने को मनसा, बाचा, कर्मणा सद्गुरु के विचारों व वचनों के अनुसार बना ले। ऐसे सद्गुरु के साथ तदात्मता के फलस्वरूप साधक किसी कार्य में व्यस्त रहता हुआ। सद्गुरु चिन्तना से आप्लावित रहने के कारण परम पवित्रता की ओर बढ़ता रहता है, जो आगे चलकर ब्रह्म ज्ञान के रूप में उदय होता है। यह कार्य स्वत: होता रहता है।

शास्त्रों में बहुत से रास्ते साधना के बताये गये हैं परन्तु दिव्य ज्ञान की गुप्त चाबी सद्गुरु के पास ही होती है। उनकी कृपा से साधक अपने अर्न्तपट को एक छण में खोल लेता है। अत: सभी ने गुरु सेवा को ही प्रधान माना है। जो सदगुरु में मनुष्य भाव को रखते हैं वह निश्चित ही जीवन के परम लाभ से वंचित रह जाते हैं। सद्गुरु की कृपा से शिष्य कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है। यही नहीं अपितु महानघोर कर्मसंस्कार भी उसका बाल बांका नहीं कर पाते (दृष्टव्य: ब्र. गोपालानन्द जी के ध्यानानुभव हाथ करने का प्रसंग)। ब्रह्मा की लेख पर मेख सद्गुरु डाल सकने में समर्थ हैं। सद्गुरु की इच्छा के विपरीत कोई भी देव कुछ भी नहीं करते।

हरी रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे नकश्चन।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्री गुरुं शंरणं ब्रजेत।।

जो सद्गुरु के श्री चरणों में अपने को पूर्ण समर्पित कर देता है ऐसे शिष्य का भार हर प्रकार से सद्गुरु वहन करते हैं। उसे लोक–परलोक जन्म–जन्मान्तर के आवागमन के जाल से छुटकारा मिल जाता है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

तत्व विजयी भव

जगदीश राए बंसल " अग्रम ", मो. 9212434003

हमारा योग गुरु भारत वर्ष योगियों और तपस्वियों द्वारा सिद्ध सेवित कृपा क्षेत्र रहा है। स्थान-स्थान पर वन्दनीय तीर्थ हैं, जैसे श्री जगन्नाथ पुरी, द्वारिका पुरी, रामेश्वरम, बद्रीनारायण, द्वादस ज्योर्तिलिंग, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती माताएँ, मथुरा, अयोध्या काशी इत्यादि के अतिरिक्त श्री प्रयागराज जी जहाँ गंगा मैया, यमुना मैया और सरस्वती मैया का संगम स्थल है। यहाँ पर यह मान्यता है कि कुम्भ मेला पर स्नान करने से सभी तीर्थो का पुण्य फल मिल जाता है। इस संगम तट पर अखण्ड मण्डलाकार योग योगेश्वर गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हर वर्ष- रामानुज मार्ग पर श्री सिद्ध गुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र का शिविर पूरे माघ मेला के लिए लगाते रहे हैं और आज भी हमारे आदरणीय गुरु भाई इसे निभाए हुए हैं।

एक बार कुम्भ मेला के चलते गुरुदेव भगवान ने अपने मुखा बिन्द से जन कल्याणार्थ योग वर्षा करते हुए बतलाया कि देखो लल्ला- साधक ही योगी बनता है और योगी ही तत्व विजयी बन सकता है। तत्व विजयी अपने शरीर को किशोर-वृद्धावस्था, या अपनी मन चाही अवस्था में रख सकता है। योगी का दर्जा तपस्वियों से, कर्म काण्डियों से, शास्त्र ज्ञानियों से, और सकाम कर्मियों से श्रेष्ट होता है। वेद में, यज्ञ में और दान में जो पुण्य अर्जित किया जाता है, योगी उन सब को लाँघ जाता है। अतः अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण ने कुरुक्षेत्र में महात्मा अर्जुन को आज्ञा दी कि तस्माद्योगी भवार्जुन।

देखो लल्ला- योगी दो प्रकार का होता है। एक साधन योगी दूसरा सिद्ध योगी। साधन योगी शनैः-शनैः लक्ष्य को प्राप्त करता है। और सिद्धयोगी, सिद्धगुरु द्वारा कमाई-कमुई अनमोल निधि को पा कर तुरन्त समाधि को प्राप्त हो जाता है। इस शक्ति पात के पश्चात देखना यह होता है, वह अधिकारी है या नहीं। जैसे शेरनी का दूध स्वर्ण पात्र में ही ठहरता है, उसी प्रकार गुरु कृपा तो हो जाती है, फलीभूत होना साधक की योग्यता पर निर्भर करता है। क्योंकि योग विद्या भाग्य से मिलती है। इसको जानने के पश्चात् और कुछ जानना नहीं रह जाता। जो साधक तप करे, उसे ऐन्द्रिय सिद्धी मिल जाती है। ऐन्द्रिय सिद्धि से दूर दर्शन-दूर श्रवण एवं रस गन्ध आदि शक्ति प्राप्त हो जाया करती है। उदाहरण के तौर पर मैंने अपने बड़े गुरुभाई श्री हरीहरानन्द की चर्चा कई बार की है कि बलिया जिले के एक गांव बसन्त पुर में रहने वाले इस लड़के का नाम था हरिराम। एक बार श्री प्रभु जी बसन्तपुर गए हुए थे तब उन्होंने देखा कि एक हट्टा-कट्टा लड़का एक महिला को बेधड़क पीट रहा था। श्री प्रभु जी ने कहा कि यह ठीक नहीं है। वहाँ के आदमी बोले कि महात्मा जी यह ठीक कर रहा है। यह स्त्री चरित्र हीन है। गांव की बहू बेटियों को बहला फुसलाकर बदचलनी में ढकेलती है और रिशवत खाती है।

श्री प्रभू जी ने हरि राम को बुलाया और पूछा, तुम कौन हो ? वह बोला– मैं ब्राह्मण हूँ। श्री प्रभु बोले ब्राह्मण का काम पढ़ना–पढ़ाना और दान लेना है। क्या तुम लेना ही जानते हो या देना भी ? वह लड़का बोला– महात्मन आज तक लिया नहीं है, मगर दे सकता हूँ। श्री प्रभु जी बोले दे सकता है तो अपना सिर दे दो। वह बोला महाराज जी, दो दिन की इजाजत दे दो....। दो दिनों में उसने अपनी तमाम सम्पति दान कर दी और तलवार सहित हाजिर हो कर बोला, लो महाराज ! आप मेरा सिर काट लो। श्री प्रभू जी बोले – एकान्त में चलो, वहाँ ले लूँगा। वह लड़का नहर पर ले गया। वहाँ जाकर श्री प्रभु जी बोले, हम तो सिर काटेंगे नहीं, हमको ब्रह्म हत्या लग जाएगा। तू अपने आप अपना सिर काट दे, हम उठा लेंगे। लड़का बोला – मैं वचन का पक्का हूँ, चाहे हिमालय विचलित हो जाए, पृथ्वी खण्ड–खण्ड हो जाए, आकाश नक्षत्र विहीन हो जाए, चाहे कछुए की पीठ पर बाल उग जाऐं, बालु से तेल निकल जाऐ, खरगोश के सींग उगजायें, मगर मैं अपना सिर काट कर ही दूँगा। इस प्रकार जैसे ही हरी राम ने जोर से तलवार घुमाई तैसे ही करूणा सागर, लीला धारी स्वयं नारायण श्री महाप्रभु जी ने उसका हाथ पकड़ लिया और सर्व शक्तिमान ने वह तलवार तोड़ डाली, और हरी राम को अपने कण्ठ से लगा लिया। क्योंकि :–

अगर तुम गैर होते तो बात न करता।
बात तो क्या तुम से मुलाकात न करता।।

भाग्य विधाता श्री महा प्रभु जी बोले, बेटा तू आज से अजर अमर है, लाखों में एक निराला है। हम अभी से शक्ति–पात करते हैं और हार्द दीक्षा देते हैं, तुम अभी से हरीहरानन्द के नाम से जाने जाओगे।

आईए, लेख से हट कर विचारें कि जगत नियन्ता गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहा करते थे कि स्वाध्याय शील ध्यान योगी तथा गुरु भक्त साधक के कर्म भोग का भुगतान स्वप्न में भी हो जाया करता है। मगर यहाँ तो महानतम चमत्कार ! कि हरीराम उर्फ हरिया से एक दम श्री हरीहरा नन्द जी महाराज, योगी जी हो गए। इसीलिए कहते हैं कि गुरुदेव का हृदय सागर से भी विशाल होता है। श्री प्रभु जी महाराज की दया दृष्टि से हरीराम के सारे पाप उपस्थित नदी में बह गए। सम्भवतः अगाध करूणा सागर जी हरीराम के किसी पूर्व कृत निष्काम कर्म का प्रति फल अर्थात हरीराम को योगीराज बनाने हेतू ही गाँव बसन्त पुर में पधारे होंगे। भाग्य विधाता जी के रहस्य को कौन जान सकता है?

सोई जानई जेहि देहू जनाई।
जानत तुम्हहिं तुम्हहिं होई जाई।।

आराध्या देव जी आगे कहते हैं कि हम भी एक बार उसके गाँव बसन्त पुर गए थे। वहाँ के बड़े–बूढ़े लोग यह सब जानते हैं। वहाँ गाँव में उसका परिवार भी है। हमने लोगों से उसके विषय में बातें की थी। लोगों ने कहा कि हरीराम को कोई महात्मा ले गए थे, मगर वह पुनः नहीं आया। हम वो नदी भी देख कर आए, बातें तो हरीराम की बहुत सी हैं, मगर यहाँ पर कहने का मतलब यह है कि इस समय भाई हरीहरानन्द जी हिमालय के शीशगिरी पहाड़ी पर समाधि से

तीन महीनें में एक बार उठते हैं। श्री प्रभु जी ने उन्हें तीव्रतम शक्ति पात करके भूतजयी सिद्ध बना कर वहाँ बैठा दिया है। इसी का नाम सिद्धयोग है। हरीराम ने या यों कहें हरीहरानन्द जी महाराज ने षटचक्र विभेदन किया हुआ है। वे अजर अमर हैं। श्री प्रभु जी ने उन्हें तत्व विजयी होने का वरदान देकर अजर अमर बनाया हुआ है। अतः वे अपनी इच्छानुसार ब्रह्मलोक तक सशरीर आ, जा सकते हैं।

एक बार हमने अपने बच्चे रघुनन्दन प्रसाद उर्फ टाटबाबा को शीशागिरी पहाड़ी पर हरीहरानन्द का पता लगाने के लिए भेजा था। उसने हमें संवाई में लौट कर बतलाया कि मैं शीशा गिरी पहाड़ी पर तो पहुँच गया था, किन्तु वहाँ विशैली हवाओं के चलते मैं उन तक नहीं पहुँच सका। मेरा शरीर फटने लगा, खून बहने लगा अतः लौटना पड़ा। वहाँ के महात्माओं से मैंने यह तो पता लगा लिया था कि उस विशैली दुर्गम पहाड़ी पर एक गुफा में श्री हरीहरानन्द जी महाराज रहते हैं और वे तीन माह में एक बार उठा करते हैं। उनकी उस गुफा के द्वार पर एक भारी भरकम पत्थर लगा है जो उन्हीं महाराज से हटता है। देखो– लल्ला एक तत्व विजयी महा सिद्ध महात्मा अपने शरीर को हजारों– लाखों वर्षों तक रख सकता है। ऐसे महा सिद्धों के दर्शन, साधक द्वारा स्वयं के तप की कमाई से हो सकते हैं।

देखो, यह प्रयाग राज तीर्थ क्षेत्र है, कुम्भ का शुभ अवसर है। इस अवसर पर यहाँ सभी देवी–देवताओं का वास रहता है। अनेक सिद्ध महात्मा यहाँ पधारते हैं। ये सब को देखते रहते हैं। अतः तुम अपने गुरु मंत्र का अधिक से अधिक जाप करो। ऐसा करने से तुम्हें निश्चित रूप से सिद्ध अनुकम्पा प्राप्त होगी। सिद्ध महात्मा देख लेते हैं कि कौन कितनी कमाई कर रहा है, इस कारण साधक का उत्थान हो जाया करता है। **दुर्लभोमानुषो देहः** अर्थात मनुष्य देह अति दुर्लभ है। यदि साधना करते रहोगे तो मुक्ति मिलने तक नर देह मिलती रहेगी। अतः मेरु दण्ड को सीधा रख कर तीन घण्टे मंत्र जाप करो। यह मंत्र बुद्धि में प्रवेश कर जाएगा– पश्चात कारण शरीर में प्रवेश कर जाएगा और तब इष्ट देव के दर्शन होने लग जाएंगे। ध्यान में इतनी शक्ति है कि यदि एक ध्यानी दूसरे श्रद्धालु व्यक्ति को स्पर्श भी करता है तो उसका भी ध्यान लग सकता है।

यस्मिन देशे वसेत योगी ध्यान योग विचक्षणः।

सोऽपिदेशः भवेत पूतः किं पुनस्तस्य बांधवा।।

अर्थात् जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश पवित्र हो जाता है, उसके बन्धु बान्धवों का तो कहना ही क्या। योग की महिमा असीम है। देखो– हिमालय के जो योगी हैं, उनके शिष्यों को उनका उपदेश निर्माण चित्त के द्वारा ही हुआ करता है। वहाँ ऐसे योगी भी हैं जिन्होंने सृष्टि बनाली है। हमारी जानकारी में तुम में से भी ऐसे कई साधक योगी हैं, जिनका ध्यान के समय शरीर उपर उठ जाया करता है।

मुझे एक बात याद आई, मेरे एक अच्छे ध्यान योगी गुरुभाई ने श्री प्रभु जी के चरणों में जिक्र किया कि मैंने अपने पितरों के लिए कुछ नहीं किया, गया जी में पिण्ड दान भी नहीं किया। श्री प्रभु जी ने कहा कि अब तू इस स्थिति में है कि अपने पितरों के लिए जैसे चाहोगे वैसा ही हो जाएगा। तुम्हें कुरुक्षेत्र अथवा गया जी जाने की जरूरत नहीं है। वे गुरु भाई ध्यान योग की

शक्ति के फलस्वरूप चिन्तन मात्र से पितरों का कल्याण करने में सक्षम बन गए थे।

मैंने तुम्हें पहले भी बतलाया था कि कोई योगी किसी गाँव में गए। वह वहाँ दो बालक उस योगी जी को अच्छे लगे। उन्होंने उन दोनों पर शक्तिपात कर दिया। वे लड़के दो–तीन सौ वर्ष समाधि में बैठे रहे। जब समाधि से उठे तो उनको अपना घर परिवार याद आया। वे घर गए तो वहाँ उनको माँ–बाप भाई, बन्धु और जैसे का जैसा मकान नहीं मिला। वहाँ एक वृद्ध बाबा मिला, बोला–जिनका तुम नाम ले रहे हो, मैं उनकी चार–पाँच पीढ़ी में हूँ। उन लड़कों को 2–3 सौ साल क्षण भर के बराबर लग रहा था जो उनके ध्यान योग की शक्ति के फल स्वरूप था।

वाराणसी में हमारा एक साधु रहता था। श्री प्रभु जी ने उसे पाँच रू. महीनें पर भोजनादि व्यवस्था के लिए रख लिया। उस साधु ने श्री प्रभुजी के सामने त्राटक का अभ्यास शुरू कर दिया। परिणाम स्वरूप वह दीवार के उस पार आने जाने वालों को देख लेता था। ऐसा योगी साधक जमीन के भीतर सब वस्तुओं को देख लेने में समर्थ्य हो जाता है। अस्तु ध्यान का अभ्यास करते–करते समाधि की अवस्था आ जाती है। उस अवस्था में हम अनुभव करेंगे " गणपितरऽहंम " अर्थात् मैं गणपति हूँ। 'शिवोऽहम् ' अर्थात् शिव हूँ। ध्यान योग का अभ्यास करने वाले के शरीर के जो भोग उसके स्थूल शरीर पर आने वाले हैं, ध्यान के प्रभाव से वे सब क्षय हो जाया करते हैं। जैसे आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की कृपा से रामरती की क्लिष्टवृत्तियाँ समाप्त हो गई और श्री प्रभु जी के शक्ति पात से तत्काल योगिनी बन गई। यदि पापों का पहाड़ ही क्यों ना हो ध्यान योग के प्रभाव से नष्ट हो जाता है। योग ही इस प्रकार की निधि है जिसको पा कर आकाश–पाताल और भूत भविष्य का ज्ञान हो जाया करता है। मेरे कहने काअभिप्राय है कि तुम्हें श्री प्रभु जी का मंत्र मिला हुआ है, यदि संयतेन्द्रिय हो कर जप व ध्यान किया जाए तो छः माह में ही साधक से योगी और योगी से तत्व विजयी बना जा सकता है। वे सर्व शक्ति मान अवश्य–अवश्य सहायता करेंगे।

सभी को बार–बार आशीर्वाद !

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

सिद्ध लोक

डॉ. श्री बालमुकुन्द, प्रवक्ता (हिन्दी विभाग), गोरखपुर

'**सिद्ध**' शब्द का प्रयोग प्राचीन ग्रन्थों में कई अर्थों में किया गया है। पर इस शब्द का प्रयोग विशेष रूप से उन परम योगियों के लिये किया जाता है जो योग या तप–साधना द्वारा चिन्मय–स्थिति को प्राप्त कर चुके होते हैं। इनकी गणना महर्षिवत् की जाती है। श्रीमद्भगवद्–गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि विभूतिमान् सिद्धों में मैं कपिल मुनि हूँ–

सिद्धानां कपिलो मुनिः।

गोस्वामी तुलसीदास ने मानस के मंगलाचरण के एक श्लोक में लिखा है कि सिद्ध लोग अपनी श्रद्धा और विश्वास की सहायता से स्वांतस्थ ईश्वर का दर्शन कर लेते हैं–

भवानी शंकरौ वन्दे,

श्रद्धा विश्वास रूपिणौ।

याभ्यां विना न पश्यन्ति,

सिद्धाः स्वांतस्थमीश्वरम्।।

–मानस–बालकाण्ड

रसेश्वर सिद्धान्त के अनुयायियों के लिये भी 'सिद्ध' शब्द का प्रयोग होता रहा है। ये 'रसेश्वर सिद्ध' कहे जाते थे, ये अन्तर्वेद प्रदेश के निवासी माने जाते रहे हैं। इनके अनुसार पारे की रासायनिक क्रिया द्वारा कायाकल्प करके शरीर को अमरत्व प्रदान किया जा सकता है। इनकी साधना–क्रिया के लिए पारद या पारा प्रधान रस था। वह साधक को संसार–सागर से पार उतारने में सहायक था। इन सिद्धों की नौ अलग–अलग परम्परायें थीं, जिनमें नौ कोटि सिद्ध पाये जाते थे। कुछ लोगों के अनुसार ये नौ कोटि सिद्ध चीनी ताओ धर्मी योग द्वारा प्रभावित थे। वह चीनी भारत में यात्री के रूप में ईसा पूर्व की किसी शताब्दी में आया था। उस योग से दक्षिण भारत के शैवागम एवं शाक्तागम लोगों ने 'शुद्ध मार्ग' की शिक्षा ग्रहण की थी। अतः वहाँ के आगामी सिद्धों पर किंचित् ताओ धर्म का भी प्रभाव पड़ा। शुद्ध मार्ग के अनुयायी सिद्धों में प्रसिद्ध 'अष्टादश' सिद्धों की गणना की जाती है। इनमें शैव–भक्त मणिवाचक, वागीश, ज्ञान सम्बन्ध एवं सुन्दर का नामोल्लेख भी किया जाता है। शुद्धमार्गी सिद्ध ज्ञानसिद्ध के नाम से अभिहित किये जाते हैं और ऐसा कहा जाता है कि वे अमर हैं। अनेक लोगों की धारणा है कि वह योग अगस्त्य ऋषि के स ‍ ‍य का था। अगस्त्य ऋषि का निवास स्थान सिद्ध कूट पर्वत था। ऐसा कहा जाता है कि शुद्ध मार्गियों के इस प्रदेश तक गुरु गोरखनाथ भी इस ईसा की 10वीं शताब्दी में यहाँ आये थे। शुद्ध मार्गी ज्ञानसिद्धों के अनुसार अपने शरीर को काय–साधनों द्वारा पूर्णतः वश में करने वाला सिद्ध ही पूर्ण सिद्ध है। ऐसा

सिद्ध अदृश्य रूप में सदा अमर बना रहता है।

सिद्ध शब्द अपने मूल अर्थ में उस व्यक्ति के लिये प्रयुक्त होता है, जिसने अपनी साधना पूरी कर ली हो और पूर्णता को प्राप्त कर आत्म–दर्शन कर चुका हो। इसी के समानान्तर 'नाथ' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका सामान्य अर्थ है 'स्वामी'। 'नाथ' पूर्णत्व को अपना अभीष्ट समझते हैं। इसी प्रकार वायु–वादी एवं मुद्रावादी हठयोगी, वज्रयानी तथा सहजयानी सिद्ध, रसेश्वर सिद्ध, दत्तात्रेय सम्प्रदाय के आचार्य महेश्वर और शैवतांत्रिक सिद्ध भी पूर्णत्व को ही अपना अभीष्ट लक्ष्य मानते हैं। 'नाथ' शब्द के 'ना' का अर्थ अनादि रूप और 'थ' का अर्थ स्थापित करना माना जाता है। बाद में 'नाथ' शब्द का प्रयोग आदरसूचक रूप में होने लगा। 'गोरक्षनाथ सिद्धान्त संग्रह' में 'नाथ तत्त्व' के सम्बन्ध में कहा गया है–

निर्गुणं वामभागे च
सत्यभागेऽद्भुता निजा।
मध्यभागे स्वयं पूर्णस्तस्मै
नाथाय ते नमः।।
मुक्ताः स्तुवन्ति पादाग्रे
नखाग्रे जीव जातयः।
मुक्तामुक्तगतर्मुक्तः
सर्वत्र रमते स्थिरः।।
वामभागे स्थितः शम्भुः
सत्ये विष्णुस्तथैव च।
मध्ये नाथः परं ज्योति–
स्तज्ज्योर्मन्तमोहरम्।।

अर्थात् जिसके वाम भाग में निर्गुण एवं दक्षिण भाग में महाशक्ति विराजमान है और जो निर्गुण और सगुण दोनों भावों का आलिंगन करके मध्य भाग में स्वयं पूर्ण स्वरूप में विराजमान है, उसी नाथ को नमस्कार है। मुक्त पुरुष जिसके चरणों के समक्ष निरन्तर स्तुति करते रहते हैं और बद्ध जीवगण जिसके नोवाग्र में जन्म–मृत्यु, सुख–दुःखादि के अधीन होकर नित्य विद्यमान रहते हैं, जो स्वयं मुक्तगति और बद्धगति से नित्य मुक्त रहकर सब देश और सब काल में अचल प्रतिष्ठ रूप से परमानन्द में विराजमान रहता है, उसी नाथ को नमस्कार है। जिसके वाम भाग में शम्भु एवं दक्षिण भाग में विष्णु तथा दोनों के बीच स्वयं चिदानन्द ज्योति स्वरूप में विराजमान रहता है, वही परम ज्योति मेरे अज्ञानांधकार का विनाश करे।

वस्तुतः नाथ, सिद्ध और अवधूत एक ही है। दीर्घकालिक साधना के पश्चात् सम्यक् सिद्धि प्राप्त कर लेने पर नाथ तत्त्व की प्राप्ति होती है। योगी नित्य नाथ और

परमब्रह्म के साथ अभिषत्व स्थापित करता है। परमसिद्धि में अवस्थित होने पर उसे 'अवधूत' की संज्ञा दी जाती है। गोरक्षनाथ के सम्प्रदाय को 'नाथ–योगी', सिद्ध–योगी' और 'अवधूत योगी' आदि नाम दिया जाता है। ये लोग 'शिव' को ही 'आदि–नाथ' की संज्ञा देते हैं। इनके अनुसार 'शिव' ही योगियों के गुरु हैं। इसी प्रकार 'शिव' ज्ञानियों, भक्तों और प्रेमियों के गुरु हैं। गोरक्षनाथ ने पूर्ण रूप से शिवस्वरूप में प्रतिष्ठित होकर सम्यक् नाथत्व को प्राप्त किया था।

योगी को दिक् और काल की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। वह सर्वकालिक होता है और किसी भी स्थान पर रह सकता है। फिर भी ऐसा कहा जाता है कि सिद्ध हिमालय पर्वत की गहन गुफाओं में समाधिस्थ रहते हैं और यथा समय लोक–कल्याण हेतु सांसारिक जीवों से भी सम्पर्क करते रहते हैं। योगियों का ऐसा भी दृढ़ विश्वास है कि परम सिद्ध तिब्बत के ज्ञानगंज नामक सिद्ध–भूमि में रहते हैं। ज्ञानगंज साधनारत योगियों की गुरु भूमि बताई जाती है। सिद्ध–योगी विशुद्धानन्द जी वहाँ के एक परम सिद्ध बाबा की कृपा से उस भूमि पर पहुँचे थे। वहाँ पर उन्होंने बीस वर्षों तक अनवरत साधना की थी। ज्ञानगंज में स्वामी विशुद्धानन्द जी ने योग–विज्ञान के अतिरिक्त सूर्य–विज्ञान, चन्द्र–विज्ञान, वायु विज्ञान और क्षण–विज्ञान जैसी विद्याओं में सिद्धि प्राप्त की थी। 'मनीषी की लोक–यात्रा' में इस सिद्धाश्रम के सम्बन्ध में जो विवरण दिया गया है, वह इस प्रकार है–

''यह सिद्धाश्रम साधारण लौकिक आश्रमों की भांति नहीं है। सामान्यजन के लिये अगोचर है। तिब्बत प्रदेश में होते हुए परिब्राजकों तथा पर्यटकों की दृष्टि में यह नहीं आता। स्थूल होने पर भी यह भौतिक स्थान नहीं है। वस्तुतः यह स्थूल नहीं है, सूक्ष्म भी नहीं है, एकाधार में स्थूल भी है, सूक्ष्म भी है। ठीक जैसे सिद्ध पुरुषों का देह–दर्शन, स्पर्शन योग्य होने पर भी क्षणमात्र में अदृश्य हो जाता है, वैसे ही सिद्धाश्रमों की भी स्थिति है–स्थूल दृष्टि से वह स्थूल और सूक्ष्म दृष्टि से सूक्ष्म है। दोनों समन्वय युक्त हैं। आश्रम के अधिष्ठातृ वर्ग की विशेष अनुज्ञा के बिना इसकी प्राप्ति तो दूर की बात है, दर्शन भी नहीं हो सकता। वहाँ बहुत से योगी, विज्ञान–विद्, भैरव–भैरवी, शिक्षार्थी तथा आचार्य विद्यमान हैं। केवल इतना ही नहीं, इस आश्रम से सम्बन्ध होने पर लौकिक जगत् से भी इसका प्रत्यक्ष अनुभव मिलता है, यहाँ तक कि उस स्थान को यहाँ से क्षण भर में वस्तुयें भेजी और वहाँ से आकर्षित कर मंगायी जा सकती हैं।''

लोक में कार्यरत ज्ञानगंज के शिष्यों का वहाँ से निरन्तर सम्बन्ध बना रहता है। बाबा विशुद्धानन्द वहाँ से सूर्य विज्ञान का लेन्स, औषधियाँ तथा अन्य वैज्ञानिक यन्त्र मंगाया करते थे और काशी से आश्रमवासी कुमारियों तथा माताओं की सेवा के लिए वस्त्र–आभूषण आदि भेजा करते थे। महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज ने इसे प्रत्यक्ष घटना के आधार पर पुष्ट किया है–

''एक दिन मेरे सामने ही एक घटना हुई। एक गुरु भाई सुरेन्द्रनाथ मुखर्जी ने ज्ञानगंज की कुमारियों के लिये 50 के लगभग रंग–बिरंगी छोटी–बड़ी साड़ियाँ लाकर बाबा को दीं। उन दिनों बाबा हनुमान घाट वाले आश्रम में तिनतल्ले पर विराजते थे। हम लोग भी उपस्थित थे। बाबा के आदेशानुसार साड़ियों का पार्सल बनाकर पूजाघर में रख

दिया गया। मैंने (कविराज जी ने) पूछा—'ये सब साड़ियाँ ज्ञानगंज को भेजी जायेंगी न ?' बाबा ने कहा—'हाँ, भेजी जायेंगी।' मैंने (कविराज जी ने) कौतूहलवश जिज्ञासा की—'कैसे भेजी जायेंगी ?' वे बोले ऐसे ही भेजेंगे। इसके बाद उन्होंने कहा—'तुम लोग बाहर बैठो। संध्या करने के पश्चात् बातें करेंगे।' हम लोग कमरे से बाहर आकर छत पर बैठ गये। बाबाजी ने दरवाजा बन्द कर लिया। आधा घण्टे बाद दरवाजा खुला। हम लोग संकेत पाकर भीतर गये। बाबा बोले—'कपड़े का पार्सल भेज दिया।' हम लोगों ने जाकर देखा—पूजाघर में पार्सल का बण्डल नहीं था।''

सिद्धों के हिमालय स्थित आश्रमों में योगेश्वर स्थान और 'कोशिकाश्रम' का विशेष महत्त्व है। काशी से विशेष रूप से सम्बद्ध योगी 'ठाकुर महाशय' ने कविराज जी को इन दोनों आश्रमों के सम्बन्ध में बताया था। ठाकुर महाशय 'अनङ्गदेव' के शिष्य थे। **अनङ्गदेव दिव्य पुरुष थे और** अपने परम भक्त शिष्यों के साथ आकाश में विचरण किया करते थे। उक्त दोनों आश्रमों के सम्बन्ध में ठाकुर महाशय ने कविराज जी को जिस रूप में बताया था, उसी रूप में उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है—

(क) योगेश्वर स्थान—''योगेश्वर स्थान नीची भूमि पर स्थित है। यह न तो बर्फ से ढका रहता है और न वृक्षों से ही। यहाँ की भूमि स्फटिक ज्योतिर्लिंग सी शुभ्र वर्ण की है। कोई मन्दिर नहीं है। विस्तृत मैदान है। ठाकुर महाशय ने देखा—वहाँ चारों कोनों में खम्भों पर पत्थर रखा हुआ है। उससे थोड़ा ऊपर एक आसन था, जिस पर एक ध्यानस्थ मुनि बैठे थे। उज्ज्वल शान्तिमूर्ति उनकी ओर देख रही थी। मुनि का मुखमण्डल जटा से घिरा हुआ था। अपूर्व सौन्दर्य था। कुमारी साक्षात् गौरी थीं। आश्रम से थोड़ी दूर नीचे एक पहाड़ी सोता था। ठाकुर महाशय वहीं से जल लाते थे। आश्रम में प्रतिदिन पुष्पाभूषणयुक्त एक द्वादश वर्षीया बालिका आकर नृत्य—गान करती हुई शिवगौरी को एक पुष्प माला पहनाती थी। संध्या होने पर वह गान करते—करते लौट जाती थी। उसके गाने की भाषा पहाड़ी थी।'

(ख) कौशिक आश्रम—यह आश्रम कौशिकी पर्वत पर है। इस आश्रम के सम्बन्ध में ठाकुर महाशय से प्राप्त अनुभवों के आधार पर कविराज जी उल्लेख करते हैं—''यह कमल के आकार का था और आधी मील तक विस्तृत था। इसके चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखलाई पड़ती थी, किन्तु यह एक आश्चर्य की बात है कि आश्रम की बर्फ नहीं थी। वहाँ की भूमि शिलामय थी। उसके नीचे एक नदी बड़े वेग से बह रही थी, जिसका नाम यामन्दाकिनी। इसे पार करना बहुत कठिन था। शिलाखण्ड पर पैर रखकर बड़ी सावधानी से उतरना पड़ता था। आश्रम में नाना प्रकार के फूलों और फलों के वृक्ष थे, जैसे भारतवर्ष में नहीं मिलते। इस आश्रम में तेरह आसन लगे हुए थे। इन तेरह आसनों में से दस आसन इस प्रकार विन्यस्त थे कि व्यवधान के कारण उन पर बैठे व्यक्ति परस्पर देख नहीं सकते थे। शेष तीन आसन उनके सम्मुख थे और ऐसे नियोजित थे कि दसों आसनों में बैठे व्यक्ति इन पर विराजमान व्यक्तियों को देख सकते थे। दस आसनों पर बैठे हुए दसों महापुरुष मनसा अचल; स्पन्दनशून्य, पत्थर की मूर्ति की भांति निश्चेष्ट एवं प्रशान्त मुद्रा में थे। उनकी आँखें पलकों के लटकते हुए चमड़े से ढकी थीं। नेत्र गोलक के भीतर छः इंच से

अधिक की गहराई में पुतलियाँ चमकती हुई दिखलाई देती थीं। उनके मुखमण्डल में लाली थी। वे कितने युग–युगान्तर से इस स्थान पर बैठे थे, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। तपस्या के प्रभाव से इनका शरीर चिन्मय हो गया था। शेष तीन आसन खाली थे। वे महापुरुष प्रयोजन के अनुरोध से जगत् कल्याण के लिये निम्न भूमि में चले गये थे। ये दिव्य–आश्रम सहज गोचर नहीं है। योग–सिद्ध देहधारी ही इनका सन्धान पा सकते हैं।''

भूतजयी योगी के लिये इन आश्रमों का दर्शन सुलभ है। ऐसे योगी की कायिक शक्ति दृढ़ होती है। उसके पास अनन्त शक्तियों का भण्डार होता है। ऐसे योगी के लिये सभी सिद्धियाँ हस्तामलकवत् हैं। योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज कहते हैं–''जो योगी भूतजयी होता है, उसके अन्दर अचिन्त्य शक्तियाँ बढ़ जाया करती हैं। ऐसा योगी अपने निर्माण चित्त से हजारों से मिल सकता है, हजारों से बात–चीत कर सकता है और यह सब कुछ कार्य करते हुए भी वह हिमालय की किसी गहन गुफा में होकर अपने आपको बिल्कुल निर्लेप अकर्तृत्व में रख सकता है। इसी प्रकार भूतजयी योगी अपनी अलौकिक शक्ति से सैंकड़ों काय–निर्माण करके लोक में कार्य कर सकता है और सब प्रकार के कर्म–बन्धनों से मुक्त रह सकता है।''

इस प्रकार सिद्ध सभी कालों में तथा सभी लोकों में अनेक रूपों में स्थिति धारण कर विचरण करने की क्षमता रखते हैं। वे कहीं भी आश्रम का निर्माण कर सकते हैं। इनके जागतिक स्थूल आश्रमों को तो प्रयास करने पर तो कोई देख भी सकता है, पर इनके सिद्ध, सूक्ष्म और चिन्मय लोक को सिद्धयोगी ही देख सकता है। गुरु–कृपा होने पर सिद्ध–लोकों का विवरण क्रमश–प्रस्तुत किया जायेगा।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योग तथा उसका महत्त्व

श्री जितेन्द्र बहादुर परमार्थी 'प्रकाश' झाँसी

योग क्या है ?

योग के विषय में सबसे पहले यह जानना आवश्यक है कि योग है क्या ? इसका उत्तर हम केवल यही दे सकते है कि चित्तवृत्तियों का निरोध करना और मन को स्थिरता प्राप्त करना ही योगसाधन का साध्य है। मन की स्थिरता से जो लाभ होता है उसका अनुभव निद्रा का विचार करने से हमारे ध्यान में आ चुका है। निद्रा में तमोगुण की अर्थात् अज्ञान की प्रधानता रहती है और योगसाधन जन्य चित्त की स्थिरता में सत्वगुण की विशेषता रहती है। तमोगुण मय अवस्था की अपेक्षा सात्विक अवस्था अधिक उच्च है, इसमें देने की कोई अवस्था नहीं है अर्थात् जितना स्वास्थ्य, आनन्द और बल निद्रा से प्राप्त होता है, उससे कई गुना अधिक स्वास्थ्य, आनन्द और बल मन की स्थिरता से प्राप्त होना सम्भवनीय है।

योगसाधन के मार्ग में आक्रमण करते-करते कोई लाभ नहीं होता, ऐसी भी बात नही है। यहाँ प्रत्येक सीढ़ी पर लाभ होते हैं और अनुभव भी आते रहते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य,अपरिग्रह इन पाँच यमों का परिपालन करने से मनुष्य का अन्य मनुष्यों और प्राणियों के साथ यथायोग्य व्यवहार होता है। सामाजिक स्वास्थ्य के लिये इनकी भारी आवश्यकता है।

आसनों के अभ्यास से शरीर का रुधिराभिसरण अच्छा होता है और सब स्नायुओं का आरोग्य उत्तम रहता है तथा सम्पूर्ण अंतड़ियों की गति ठीक प्रकार से होती रहती है। जो लोग जानते हैं कि रुधिराभिसरण, नसनाड़ियों की निर्मलता और अंतड़ियों की गति के साथ मनुष्य के आरोग्य का कितना घनिष्ट सम्बन्ध है, उनको कहने की आवश्यकता नही है कि आसनों से क्या लाभ होता है ?

प्राणायाम से फेफड़ों की शक्ति बढ़ती है। रुधिर अधिक शुद्ध होता है और सम्पूर्ण नाड़ी चक्रों में चेतना उत्पन्न होती है। इसका स्वास्थ्य के साथ अत्यधिक सम्बन्ध है, जिससे फेफड़े बलवान होते हैं, वह दीर्घायु हो सकता है जिसका रुधिर शुद्ध होता है उसके अन्दर रोग प्रतिरोधक शक्ति होती है, इसलिये उस के पास रोग नहीं ठहरते और वह हमेशा निरोग रहता है।

योगियों ने प्राणायाम तथा कुम्भक की शिक्षा उल्लिखित प्राणियों से ही ग्रहण की थी। उन्होंने अनुसंधान करके देखा कि किसी निर्दिष्ट समय के मध्य जिन प्राणियों के श्वास की संख्या अल्प और अल्पायत है वे सब दीर्घ जीवी और जिन प्राणियों के श्वास की संख्या उतने समय में अधिक और दीर्घ है, वे अल्पायु हैं। योगियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि मनुष्य अपना श्वास, प्रश्वास अल्प संख्या में और अल्पायत कर सके तो अवश्य अपने

निर्दिष्ट जीवन काल कीअपेक्षा अधिक समय तक जीवित रह सकता है। श्वांस–संख्या और श्वांस–आयतन की अल्पता पर ही जीवों की आयु की दीर्घता निर्भर होती है। इस बात का प्रमाण विभिन्न जीवों की श्वांस संख्या और परिणाम के सम्बन्ध में तैयार की गयी निम्नलिखित तालिका प्रस्तुत करती है–

प्राणी	प्रायिक संख्या श्वांस प्रति मिनट	प्रायिक परमायु
खरगोश	38–39	8 वर्ष
कबूतर	36–37	7–8 वर्ष
बन्दर	31–32	20–21 वर्ष
कुत्ता	28–29	13–14 वर्ष
बकरी	23–24	12–13 वर्ष
बिल्ली	24–25	12–13 वर्ष
घोड़ा	18–19	48–50 वर्ष
मनुष्य	12–13	100 वर्ष
हाथी	11–12	100 वर्ष
सर्प	7–8	120–122 वर्ष
कच्छप	4–5	150–155 वर्ष

योग आसनों से चिकित्सा

आसनों द्वारा रोग दूर करने के यत्न का नाम आसन चिकित्सा है। आसनों के अभ्यास से शरीर के रक्षा–केन्द्रों को उद्दीपित करके उनके द्वारा आवश्यक जीवन–रस इस शरीर में अधिक उत्पन्न करने से यह चिकित्सा होती है।

शरीर में कई रक्षा केन्द्र हैं, जिनकी निरोगता पर शरीर का आरोग्य निर्भर है। गुदा स्थान, नाभि–स्थान, हृदय, कंठ और मस्तक इतने स्थानों में इन रक्षा–ग्रन्थियों का निवास है और आसनों के कारण इन ग्रन्थियों से अमृतरस अधिक परिमाण में स्रवता है जो रोग दूर करने में सहायता करता है। परमात्मा को धन्यवाद करना चाहिए जिसने हमारे ही शरीर में आरोग्य के अनन्त साधन उपस्थित रखे हैं और प्राचीन आर्य योगियों की प्रशंसा करनी चाहिए, इसलिए कि उन्होंने उक्त साधनों की खोज करके उनका उपभोग करके यौगिक उपाय हमारे सामने सुगम रीति से रखे हैं।

मनुष्यों के शरीर में पेट ही एक ऐसा स्थान है कि जहाँ प्रायः हर एक बीमारी का प्रारम्भ होता है। इस लिये आर्यों के धर्मशास्त्र में बहुत से नियम लिखे हैं, और योग शास्त्र में भी आसनों व्यायाम बताये हैं, जिन से पेट के दोष बहुत अंश में दूर हो जायें। नीचे कुछ रोगों का वर्णन किया गया है तथा यह भी बताया गया है कि कौन से रोग के लिए कौन से आसन लाभदायक हैं।

अजीर्ण–

अन्न उत्तम रीति से जीर्ण न होने का नाम अजीर्ण है। यह दोष केवल पेट का ही नहीं है। भूख की अपेक्षा अधिक खाना, जिह्वा की खुशी के लिए जैसे चाहे वैसे पदार्थ आवश्यकता से

भी अधिक खाने, असमय भोजन करना, दिन में अधिक बार खाना, पहना खाया हुआ पूर्ण रीति से जीर्ण होने के पूर्व ही दूसरी बार खाना, आरोग्य रीति से पका हुआ अन्न सेवन करना, परस्पर विरोधी पदार्थों का एक समय सेवन करना, मन की असवस्थता की अवस्था में भोजन करना, ठीक प्रकार न चबाते हुए खाना इत्यादि अनेक कारण हैं जिन से कि अजीर्ण रोग की उत्पत्ति होती है।

आवश्यक पथ्य सम्भालने के पश्चात् पाठक प्रतिदिन कुछ समय 'सूर्यभेदन व्यायाम के लिए देंगे तो उनका अजीर्ण विकार निःसन्देह दूर हो सकता है और साथ ही साथ निम्नलिखित आसन करने से रोग का मूल ही पूर्ण रीति से दूर होगा।

अजीर्ण को दूर करने के लिए प्रतिदिन निम्नलिखित आसन लाभप्रद हैं–

शीर्षासन, चक्रासन, पश्चिम–तानासन, जानुशिरासन, सर्वांगासन, ऊर्ध्वसर्वांगासन, भुजंगासन, नागासन, उष्ट्रासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, मत्स्यासन, गर्भासन, ऊर्ध्वपद्मासन।

कमर दर्द–

कमर दर्द तथा पीठ के पूर्व प्रायः शोच खुलकर न आने की शिकायत रहती है। इसके लिए निम्नलिखित आसन लाभदायक हैं–

कोनासन, हस्तपादांगुष्ठासन, उष्ट्रासन। इनमें पश्चिमतानासन तथा जानु शिरासन बड़ा उपयोगी है। युक्ति से उसी दर्द के स्थान पर खिंचाव उत्पन्न करने से बड़ा ही लाभ होता है।

खांसी–

जो लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक शीर्षासन अथवा ऊर्ध्वसर्वांगासन करते हैं उनको प्रायः कास श्वांस या खांसी आदि बीमारी नहीं सताती। इसके लिए निम्न आसन आरोग्य–प्रद हैं, यह अनुभव से सिद्ध होता है–जानु शिरासन, शीर्षासन, पश्चिमतानासन, ऊर्ध्व सर्वांगासन।

जुकाम–

नेती अथवा जल की नेति जो करते हैं, तथा शीर्षासन के जो अभ्यासी हैं अथवा नियमपूर्वक सूर्यभेदन व्यायाम जो करते हैं उनको जुकाम के कष्ट नहीं होते। शीर्षासन और ऊर्ध्वसर्वांगासन इसमें बड़े उपयोगी हैं।

दृष्टि दोष–

इसके लिए शीर्षासन तथा ऊर्ध्वसर्वांगासन विशेष लाभ करते हैं।

निद्रानाश–

पेट के दोष के कारण निद्रानाश प्रायः होता है। शीर्षासन विशेष उपयोगी है। सूर्य–भेदन के व्यायाम से भी चिरस्थायी लाभ होता है।

पीनस–

पीनस नासिका का रोग है। नासिका द्वारा कुएं का ताजा पानी पीने के अभ्यासी से इस रोग की निवृत्ति होती है। साथ–साथ ऊर्ध्वसर्वांगासन तथा शीर्षासन करना बड़ा लाभकारी है।

बलवर्धन (अशक्तता को दूर करना)–

बल बढ़ाने के लिए आसनों का सूर्यभेदन व्यायाम प्रसस्त है। ऊर्ध्वपद्मासन, उत्थित्त पद्मासन, वकासन, लोलासन, दोलासन, मयूरासन, वृश्र्चिकासन आदि आसन, सहायक हैं।

रक्तदोष–

कंठबंध, शीर्षासन और ऊर्ध्वसर्वांगासन करने से रक्तदोष दूर होता हैं।

श्वेत बाल–

शीर्षासन और ऊर्ध्वसर्वांगासन के अभ्यास से एक साल में बाल काले होने लगते हैं।

प्रतिदिन कम से कम आधा घण्टा यह अभ्यास करना चाहिए।

सूजन–

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वसर्वांगासन करने से सूजन कम होती है। तथा जिस अवयव के अक्सर ऊपर सूजन हो, उसके लिए हितकारी आसन करने से बड़ा लाभ हो सकता हैं।

ह्रदय विकार–

भूमि पर लेटकर करने के सब आसन इस विकार में किये जाते हैं। यदि पाचन दोष से इस विकार की उत्पत्ति है तो मंदवेग से सूर्य–भेदन व्यायाम करने से यह विकार हट जाता है।

मनुष्य जीवन भर शरीर को ही अपना अस्तित्व मानकर उसी को सजाने में लगा रहता है। आत्मा की चर्चा एवं चिन्तन के लिए तो उस पर समय ही नहीं है। जबकि आत्मा ही सर्वशक्तिमान, विश्व को प्रकाशित करने वाली, विश्व कल्याणकारी, विघ्न विनाशक, कर्मातीत, शुद्ध तथा परमात्मा द्वारा रक्षित है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

कुराने में प्रथम योग-प्रचार कार्यक्रम

अशोक शर्मा, दिल्ली

यह घटना पं. हरप्रसाद शर्मा जी (मास्टर जी) और उनके परिवार से संबंधित है। जिन्हें गुरुदेव भगवान 'भैया' और कभी-कभी 'मास्टर जी' कहकर बुलाते थे। गुरुदेव भगवान का प्रथम योग-प्रचार कार्यक्रम कुराना (अहर कुराना) से प्रारम्भ हुआ जहाँ मास्टर जी सरकारी मिडिल स्कूल के हैडमास्टर थे। उस समय इस परिवार में मास्टर जी के चार सुपुत्र 'पं. रामेश्वर दत्त', 'पं. नारायन दत्त', 'पं. कृष्ण दत्त', 'पं. विष्णु दत्त' और एक पुत्री 'श्रीमती प्रेमलता' थी।

मास्टर जी सद्‌गुरुदेव भगवान आनन्द कंद योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के पूज्य पिता सुनामधन्य पं. देवीराम जी के समय में अलूपुर आया जाया करते थे। उस समय (महाप्रभुजी श्री रामलाल जी महाराज के इह लोक-लीला संवरण सन् 1938 के पूर्व) अंग्रेजों के समय में डाक का प्रभार भी स्कूल के हैडमास्टर के पास रहता था। अतः जब भी मास्टर जी का चक्कर गुरुदेव की जन्म भूमि अलूपुर जिला करनाल (अब जिला पानीपत) हरियाणा (तब पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत आता था) गुरुदेव भगवान जी के पिता जी इनसे पोस्टकार्ड व अन्तर्देशीय तथा लिफाफे लिया करते थे। और लिखे हुए पत्र आदि मास्टर जी को डाक द्वारा पोस्ट से प्रेषित करने के लिए दिया करते थे। पं. देवीराम जी उत्तर भारत के आर्य-समाज के गणमान्य प्रचारक थे। अतः डाक से अपने कार्यक्रम की सूचना दिया करते थे।

कई बार मास्टर जी के आने पर पं. जी उन्हें भोजन कराया करते थे। गुरुदेव भगवान के उपस्थित होने पर उन्हें कहते 'अरे ब्रह्मचारी! मास्टर जी को भोजन कराना है। उन्हें गुरुदेव ने उड़द-चने की मिली-जुली दाल और चूल्हे पर मिस्सी रोटी बनाकर भोजन कराया। गाँव के बाहर के मकान में तब जामुन का एक वृक्ष था। जामुन की ऋतु के समय गुरुदेव भगवान के पिताजी के कहने पर स्वयं गुरुदेव भगवान ने पेड़ पर चढ़कर जामुन तोड़कर खिलाई। अस्तु! मास्टर जी का गुरुदेव भगवान के परिवार के साथ बड़ा ही पुराना रिश्ता था। गुरुजी उस समय ब्रह्मचारी वेष में टाट पहनकर रहते थे। थोड़ी-थोड़ी दाढ़ी व मूँछें थीं। वह स्वयं भी श्री महाप्रभु जी को पत्र लिखकर डाक से भेजने के लिये मास्टर जी को दिया करते थे। कि मेरी भी ये चिठ्ठियाँ डाक से भेज देना। गुरुदेव भगवान के पिताजी के देहावसान और महाप्रभुजी के इहलीला संवरण (सन् 1938) के साथ आना-जाना समाप्त हो गया। क्योंकि तब गुरुदेव कभी-कभार अलूपुर आते थे। अन्यथा ऋषिकेश, वृन्दावन और सँवाई अधिक निवास किया करते थे।

सन् 1952 में मास्टर जी के एक शिष्य पं. हरीराम 'गन्नौर निवासी' ने जोकि अपने को इनका पुत्र समान ही मानता था, ने आग्रह किया कि पिताजी अब की बार आप अलूपुर में एक

योगिराज जी हैं उनका योग-प्रचार कार्यक्रम कराओ। क्योंकि क्वार के महीने में यह परिवार कुराने में रामलीला खेला करते थे। पं. हरीराम के कहने पर अपने ज्येष्ठ पुत्र पं. रामेश्वर दत्त जी (जिन्हें प्यार से सब रमेश कहते थे) से पत्र लिखकर निवेदन किया कि हमारे यहाँ योगिराज जी सुविधानुसार योग-प्रचार कार्यक्रम की तारीख निश्चित करने की कृपा करें। पत्र दस्ती हरिराम के हाथ पूज्य गुरुदेव भगवान के पास भेजा गया।

पत्र को पढ़कर गुरुदेव भगवान ने उत्तर में दस्ती पत्र लिख भेजा कि चिरंजीव तुम्हारी जाति क्या है ? गोत्र क्या है ? आदि-आदि।

पत्र का उत्तर तत्काल मास्टर जी ने सारा विवरण पं. रमेश जी के हाथ लिखवाकर दस्ती गुरुदेव भगवान के पास भेज दिया और कृपानिधान ने तत्काल ज्येष्ठ माह में ही अपने आने और योग-प्रचार कार्यक्रम निर्धारित तिथि से कुराने में करने का निश्चय लिखवाकर हरीराम के हाथ दस्ती-पत्र कुराना भेज दिया गया।

ज्येष्ठ माह सन् 1952 में पं. रमेश जी को घोड़ी लेकर योगिराज जी को लेने के लिये कुराने से अलूपुर भेजा गया। वह घुड़सवारी जानते थे। गुरुजी दोपहर का भोजन कर अपने वस्त्रादि एक बिस्तर में टाट में लपेट कर घोड़ी पर बैठकर चल दिये। गुरुजी घोड़ी पर आगे बैठ गये औरउनका बिस्तर पीछे रखा गया। बेटा रमेश घोड़ी की रास को थामकर खेत की मेंढ़ों पर चलकर कुराने को प्रस्थान कर गये।

कुराने पहुँचकर ज्यों ही मास्टर जी ने अपने पूर्व परिचित ब्रह्मचारी जी को योगिराज के रूप में देखा तो प्रसन्नता से उछल पड़े और खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह तो सोचते थे कि योग-प्रचार के लिये कोई संन्यासी महात्मा दाढ़ी-जटाओं वाले गेरुआ वस्त्र धारी होंगे। परन्तु यह तो पं. देवीराम जी के ही सुपुत्र ब्रह्मचारी ही योगिराज श्रीचन्द्रमोहन जी महाराज हैं। जोकि अपने सद्गुरुदेव परात्पर ब्रह्म अनन्त श्री महाप्रभु पं. रामलाल जी द्वारा उद्घाटित योग की धारा के प्रवाह को आगे बहाने का संकल्प लेकर योग की पताका लिये योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज निकले। जिन्हें स्वयं अपने गुरुदेव से योग-प्रचार की आज्ञा विधिवत् मिली थी।

यह योग-प्रचार का पहला कार्यक्रम कुराने में एक माह तक चला। प्रातः श्री प्रभुजी की आरती और गीता-पाठ के पश्चात् गुरुदेव स्वयं झपड्डू के बाग में सभी को ध्यान में बिठा दिया करते थे। गुरुजी एक वृक्ष के नीचे खाट बिछाकर विश्राम में बैठ जाते थे। प्रत्येक साधक पुष्प प्रसाद गुरुजी से लेकर अलग-अलग पेड़ों के नीचे ध्यान में बैठते थे। एक घण्टे ध्यान में बैठकर अभ्यास के बाद सभी अपने-अपने अनुभव जो ध्यान में अनुभूति होती थी, उन्हें सुनाया करते थे। पं. रमेश जी की धर्मपत्नी श्रीमती कमला देवी शर्मा गुरुजी का भोजन बनाया करती थीं। वह गुरुजी को रसोई में बोरी के आसन पर बिठलाकर एक-एक फुल्का चूल्हे पर सेक कर प्रेमपूर्वक भोजन बनाकर खिलाया करती थीं। गुरुदेव जी को सभी अपने परिवार के बड़े-बूढ़े की तरह आदर मान दिया करते थे। सद्गुरु सत्ता क्या होती ? इसका इन्हें रंचमात्र भी ज्ञान न था। गुरुजी से सब खुल कर बात किया करते थे।

रात्रि को महाप्रभुजी की आरती होती थी और उसके पश्चात् गुरुदेव जी योग-सिद्धांतों पर व्याख्यान दिया करते थे। यह क्रम प्रतिदिन चला करता था। प्रातःकाल आरती-पूजा,

गीतापाठ और ध्यानाभ्यास के बाद नेति–जीवन तत्व आदि क्रियायें और शीतली–नमोमुद्रा प्राणायाम और अन्य योगासन भी सिखाये जाते थे। ये सभी क्रियायें व्यक्ति की योग्यता, क्षमता और अधिकारी के अनुसार सिखलाई जाती थीं। उस समय योग का धुँआधार प्रचार चला। लोगों को बड़ी–बड़ी अनुभूतियाँ हुई। ध्यान का विशेष प्रवाह चला और सभी भाग्यशाली जीवों ने योग के अमर पथ को पाया और कृतकृत्य हो गये।

अवतार दिवस पर विशेष

आ गया, राम नवमी महापर्व गुरुदेव एक विनय सुनाने को।
श्रद्धा से अर्पित पुष्प लिए, चरणों में शीश झुकाने को।।
नभ से आयी रवि प्रकाश प्रभु चरणों का अभिनन्दन करने को।
मधुर–मधुर मुस्कान हिलोरे लेती, त्रिभुवन जग पति वंदन को।।
वसुधा में छायी हरी क्रान्ति ऋतुराज शरद महोत्सव मना रहे।
मन्द–मन्द समीर भी चलती प्रभु चरणों में (चँवर) डुलाने को।।
प्रकृति ने, सम्मोहक बनकर अपना सौभाग्य मनाती हैं।
प्रथम दर्शन की लालसा जागी श्रद्धा सुमन चढ़ाने को।।
वाद्य–यन्त्र थे मधुर मनोहर रचना सब कला कौशल की थी।
पंक्तिबद्ध थे सभी शिष्य, सब बारी–बारी पूजन करते थे।
गुरुदेव के जय, जय कारों से सारा भू–मंडल गूंज उठा।।
परम् तत्व प्रभु व्यापक तुम हो, अतिशय अगम अगोचर हो।
श्री रामलाल प्रभुदेव आपको राम नवमी मंगलमय हो।।
अज्ञेय, पुरुष का अवतरण दिवस सब को मंगल मय हो।
गुरुदेव आपके चरणों में राम नवमी महा पर्व मंगल मय हो।।
आ गया, राम नवमी महापर्व गुरुदेव एक विनय सुनाने को।
श्रद्धा से अर्पित पुष्प लिए, चरणों में शीश झुकाने को।।

प्रेषक – वेदव्रत द्विवेदी (उमापुर)

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

यौगिक प्रश्नोत्तरी

पूज्यपाद श्री गुरुदेव जी द्वारा

यम-नियमों की साधना तथा उनसे लाभ

प्रश्न—पूज्यपाद गुरुदेव! मैंने आपके व्याख्यानों में यह सुना है कि अष्टांग योग का क्रमशः पालन किया जाये तो वह बहुत ही उत्कृष्ट रहता है। और योग के आठ अंगों में से आप बार-बार यह भी समझाया करते हैं कि साधक को यम और नियमों का पालन करना बहुत ही आवश्यक होता है, और यह भी कहा करते हैं कि—

यमान् पतत्यकुर्वाणो
नियमान् केवलान भजन्।

अर्थात् जो मनुष्य नियमों का तो यथा-तथा पालन करता है पर यमों के पालन की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देता तो उसका पतन हो सकता है और जो व्यक्ति यमों के पालन पूर्वक नियमों का भी पालन करता है उसका कभी भी पतन नहीं होता। गुरुदेव! ऐसा क्यों होता है, आप इस विषय को मुझे पुनः समझाने की कृपा करें।

उत्तर—सौम्य! तुम्हारा प्रश्न बिल्कुल ठीक है। हम भी कई दिनों से यह सोच रहे थे, कि तुम्हें अष्टांग योग की विधिपूर्वक शिक्षा दे दें, ताकि तुम पतन से परे हो कर योग के उच्चतम उद्देश्य को प्राप्त कर सको। अष्टांग योग की साधना में यम और नियमों की साधना ही मनुष्य के उत्थान की आधार भिति है। यदि कदाचित् यम नियमों की साधना के बिना भी किसी प्रकार से समाधि उपलब्ध हो भी जाती है तो उस व्यक्ति को पतन का भय रहता ही है। इसलिये योग समाधि प्राप्त करने से पहले साधक को चाहिये कि यम नियमों के साधनों को वह पहले से ही अपने जीवन में गहराई से घटित कर ले।

प्रश्न—गुरुदेव! आप कई बार अपने व्याख्यानों में यह भी बतलाया करते हैं कि सिद्धानुग्रह प्राप्त व्यक्ति को बिना ही किसी प्रयास के समाधि लाभ हो जाया करती है, और इस विषय को भी आपने समझाया है कि—

'तदा दृष्टुः स्वरूपेऽवस्थानं'

अर्थात् किसी प्रकार यदि समाधि प्राप्त हो जाती है तो जीवात्मा अपने स्वरूप में अवस्थिति हो जाया करता है। और वह स्थिति ऐसी होती है कि जिसमें गुण और वृत्तियों का कोई सम्बन्ध रहता ही नहीं। स्वरूपस्थिति में जीवात्मा बौद्धेय धर्मों से रहित होकर केवलीभाव से ही अपने स्वरूप में स्थित रहा करता है। हे गुरुदेव ऐसी स्थिति में गुण वृत्ति सम्बन्ध तो रहता ही नही है फिर क्या आवश्यकता है कि मनुष्य यम और नियमों के तथा इसके अतिरिक्त प्राणायाम, प्रत्याहार आदि क्रियाओं के चक्कर में पड़े। इससे अच्छा तो क्या यह नहीं रहेगा कि

मन लगाकर समाधिस्थ रहे ?

उत्तर—हे पुत्र यह बात तो ठीक है कि समाधिस्थ योगी के साथ गुण वृत्ति सम्बन्ध तो बिल्कुल नहीं रहता है। और यह भी ठीक है कि अन्तरायों से रहित होकर के योगी निर्द्वन्द्व किसी जंगल में रहता हुआ यदि निर्विकल्प और निर्विघ्न समाधि को प्राप्त होता है और स्वरूपस्थिति पूर्णता से प्राप्त कर लेता है तो उसका कार्य हो गया। उसको जो प्राप्त करना चाहिये था वह प्राप्त कर चुका है और पोरी–दर–पोरी जुड़ा हुआ चक्र संसार यह काट चुका है ऐसी हालत में उसका कोई भी कर्त्तव्य अवशेष नहीं रहता और उस पर यह नियम पूर्णरूपेण लागू हो जाता है कि—

विद्यते हृदय ग्रन्थि

श्छिद्यन्ते सर्वसंशयः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि,

तस्मिन दृष्टे परावरे।।

अर्थात् परावर उस व्यापक सत्ता के देख लेने के बाद योगी की हृदय ग्रन्थि टूट जाती है एवं सब प्रकार के संशयों का नाश हो जाता है, और कर्म बन्धन क्षय हो जाया करते हैं। उसका कुछ भी कर्त्तव्य अवशेष नहीं रहता। यदि वह योगी चाहे तो परावर दर्शन के बाद सभी प्रकार के कर्म बन्धनो को क्षय करके एवं ब्रह्मरन्ध्रता विभेदन करके अपने आप को ब्रह्मलीन कर सकता है किन्तु यह स्थिति उसकी समाधि अवस्था में ही तो रहेगा। समाधि से नीचे आने पर तो वृत्ति सारूप्य होगा ही, और वृत्ति सारूप्य होने पर—

सदृशं चेष्टते स्वस्याः

प्रकृतें ज्ञानवानपि।

अर्थात् पूर्ण ज्ञानयुक्त हो जाने के बाद भी समाधि से उठने पर जैसी–जैसी जिसकी सहजा प्रकृति रहती है अपने स्वभाव के अनुसार वह वैसी ही चेष्टायें भी किया करता है जैसे दुर्वासा ऋषि का क्रोधी होना प्रख्यात है, दुर्वासा ऋषि समाधि अवस्था में थोड़ा क्रोधी रहा करते थे किन्तु समाधि से उठने के बाद जब उनको वृत्ति सारूप्य होता था तभी वे वर एवं श्राप आदि दिया करते थे। इसलिये उनकीअपनी प्रकृति के अनुसार वृत्ति सारूप्य ही से यह सब बातें होती रहती थीं। यदि मनुष्य गुरुदेव के नियन्त्रण में रह करके अपने आपको कसौटी पर कस लेता है तो वह उत्तम प्रकृति बन जाने के कारण सभी प्रकार के पतन से परे हो जाया करता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! मैंने कई बार आप से यह सुना है कि सहजा प्रकृति नहीं बदला करती और आप बार–बार यह कहा भी करते हैं कि—

'स्वभावो हि दुश्त्यजः पुंशा'

अर्थात् स्वभाव का बदलना बहुत ही कठिन होता है। जब स्वभाव का बदलना बहुत ही कठिन है और सहजा प्रकृति नहीं छोड़ी जा सकती तो ऐसी स्थिति में यम–नियमों के पालन से क्या लाभ ?

उत्तर—हे पुत्र यह बात तो ठीक है कि सहजा प्रकृति यों ही सरलता से नहीं बदली जा सकती किन्तु बाल्यकपन से ही यदि गुरुदेव के नियन्त्रण में रह करके यम–नियमों की साधना करता है और गुरुदेव के पूर्ण नियन्त्रण में रहता है तो दृश्य जन्म संवेदनीय कर्मों के अनुसार स्वभाव में काफी परिवर्तन आ जाया करता है। गुरुदेव के नियन्त्रण से और तमोगुण और रजोगुण के स्वभाव वाले व्यक्ति अवश्य बदल जाते हैं। क्योंकि बालकपन का मन कोमल होता है और उस ही समय से यदि गुरुदेव का नियन्त्रण प्राप्त हो जाये और अहिंसा आदि व्रतों का उपदेश दे दिया जाये तो उस बच्चे के मन में अवश्य ही परिवर्तन आ जाया करता है। फिर वह यौगिक सिद्धान्तानुसार पूर्णता प्राप्त कर लेने पर भी वर और श्राप के झमेले में नहीं पड़ता एवं निर्वाण पद को वह सहज में ही प्राप्त कर लिया करता है। इसलिये यम–नियमों की साधना अष्टांग योग की साधना की आधार भित्ति है।

प्रश्न—हे गुरुदेव यदि ऐसी बात है तो आप कृपा करके मुझे यम और नियमों का उपदेश कीजिये जिससे मैं अपने जीवन को सफल कर सकूँ?

उत्तर—हे पुत्र ठीक है यम नियमों की साधना बहुत ही आवश्यक है और उनमें भी सबसे पहले यमों की साधना का पूर्ण रूपेण अभ्यास करना चाहिए।

प्रश्न—हे गुरुदेव आप कृपा करके मुझे यमों की साधना सविस्तार समझाइये जिससे कि मैं उनका अभ्यास कर सकूँ।

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।

—योग–दर्शन

उत्तर—इस सूत्र के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यह पांच साधनायें यम कहलाती हैं, इनमें यम–नियमों की सब साधनाओं की आधारभूत अहिंसा है। इसी सूत्र का अर्थ करते हुए भगवान व्यासदेव अहिंसा के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

अहिंसा—

तत्राहिंसा—सर्वथा सर्वदा सर्व–भूताना मनभिद्रोह उत्तरे च यमनियमास्तनमूला –स्तत्सिद्धिपरतया तत्प्रति–पादनाय प्रतिपाद्यन्ते, तदवदातरूप–करणायैबोपादीयन्ते तथा चोक्तम्–सखल्वयं ब्राह्मणो यथा तथा ब्रतानि बहूनि समादित्सते तथा–तथा प्रमाद कृतेभ्यो हिंसा निदानेभ्यो निवर्त्तमान स्तामेवा वदात–रूपाम् अहिंसा करोति–

अर्थात् अहिंसा के अतिरिक्त शेष यम–नियम अहिंसा की पुष्टि के लिये ही है। इस विषय को इस प्रकार समझ लेना चाहिए, उदाहरणार्थ हम सत्य बोलते हैं। सत्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए भगवान व्यासदेव जी ने निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखी हैं :

सत्यं–यथाऽर्थेवाङगमनसे, यथा दृष्टं यथाऽनुमिते यथा श्रुतं तथा वाङमश्चेति परत्र स्वबोधसङ् क्रान्तये वागुक्ता सा यदि न वञ्चिता भ्रान्ता। प्रति पत्ति बन्ध्या वा भवेदिति एषा सर्व भूतोशतर्थं प्रवृत्ता न भूतोपघात परैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत तेन पुण्याभासेन पुण्य प्रति रूपकेण कष्टंतम प्राप्नुयात।

अर्थात् यथार्थ वाणी जैसे देखी सुनी व अनुमान की हुई दूसरे को अपना अर्थ समझाने के लिये न वंचनों से युक्त, न भ्रांतियुक्त व न अस्पष्टार्थ कही हुई, जो प्राणी मात्र के परोपकार

के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा, सत्य प्रयुक्त होती है, वही वाणी सत्य कहलाती है। इसी के द्वारा प्राणी–मात्र का भला होता है। इसलिए सत्य–त्रादन अहिंसा की निर्मलता के लिये अन्य सब प्रकार के व्रताचरण अहिंसा धर्म को ही परिपुष्ट करते हैं। यह अहिंसा किसी जाति किसी देश और किसी काल व समय से युक्त न हो और सार्वभौमिक अहिंसा हो तो महाव्रत कहलाती है। यथा भगवान पतञ्जलिदेव के शब्दों में–

जाति देश काल समयानवच्छिन्ना: सार्वभौमा महाव्रतम्।

–योग सूत्र 2/3/1

जाति देश आदि का अभिप्राय जैसे मछली मारने वाले केवल मछली ही मारते हैं। उनकी हिंसा मछली जाति में है। दूसरी सब जगह वह अहिंसक हैं। देश में जिस प्रकार से आज कल तीर्थ आदिकों में बलिदान देने की प्रथा है। तीर्थ स्थानों में जो बलि आदि देते हैं वह स्थान विशेष की हिंसा है। इसलिये देश विशेष की हिंसा और इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी खास पुण्य काल में हिंसा करते हैं। जैसे पुण्य विषय किसी खास समय पर आने वाली अष्टयी, चतुर्थदशी आदि में बलि का विधान होता है। वह काल विषय हिंसा, कालगता हिंसा, कहलाती है। इसी प्रकार जो किसी खास विशेष समय के लिये बड़े–बड़े किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये हिंसा की जाती है वह समय की हिंसा कहलाती है। इन्हीं सब प्रकार की हिंसाओं से निकल करके प्राणी मात्र में सब देश में तब काल में और बड़े महान किसी कार्य के लिए भी जो हिंसक नही वो अहिंसा रूप महाव्रत को धारण करने वाला बन जाता है।

हिंसा की हुई, कराई हुई, लोभ से, क्रोध से और मोह से, मृदु मध्य व अधिमात्रादि भेदों से नैकड़ों भेदों की है। पूर्ण अहिंसा व्रती वही कहला सकता है जो लोभ, क्रोध, मोह के वश में होकर के किसी भी प्रकार से हिंसा न करे कराये न अनुमोदन करे। भगवान पतञ्जलि जी लिखते हैं–

वितर्कवाधने प्रतिपक्षभावनम्।

–योग सूत्र 2/33

अर्थात् जब–जब साधक के सामने हिंसा व्रत आये तब–तब उसको प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिये। मनुष्य लोभ, क्रोध, मोह के वश में होकर सोचता है कि मैं अपने शत्रु को मार दूँगा और झूठ बोलना पड़े तो झूठ भी अवश्य बोलूँगा, इसके धन को चुरा लूँगा। इसकी स्त्री से बलात्कार करूँगा, और उसके स्थान आदि को जबरदस्ती से छीन कर उसका मालिक हो जाऊँगा, इत्यादि भाव जिस समय साधक के मन में प्रबलता धारण करें तो साधक को इसके अतिरिक्त विपरीत भावनाओं को अपने हृदय में स्थान देना चाहिये। उसे सोचना चाहिये कि संसाराग्नि के घोर अंगारों में पिसते हुये मैंने प्राणी मात्र को अभय प्रदान करने वाला योग अपनाया है। अब मैं पुन: इस अग्नि में नहीं पड़ूँगा। इस प्रकार की धारणाओं को दृढ़ करता हुआ मनुष्य कृतकार्यता, मनमोदिता आदि तीनों प्रकारकी हिंसाओं से बचकर के पूर्ण अहिंसा व्रत को प्राप्त करता है। वह प्राणी–के प्रति बैर छोड़ देता है और इसके प्रति भी प्राणीमात्र अपना बैर छोड़ देते हैं। भगवान पतञ्जलि–देव जो अहिंसा की पूर्ण पराकाष्ठा का फल बतलाते हैं–

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः।

—योग सूत्र 2/32

अर्थात्अहिंसा की पराकाष्ठा को पहुँच जाने वाले साधक के प्रति प्राणीमात्र बैर छोड़ देते हैं, इसी कारण से इस अहिंसा के पूर्ण प्रतीक हमारे ऋषि मुनियों के आश्रमों में शेर, चीता और साधारण व अन्य मृगादिकों का समान मैत्री भाव से रहना सुनते हैं।

प्रश्न—हे गुरुदेव! आपने जिस अहिंसाका वर्णन किया है वह अहिंसा तो साधना साध्य है, अर्थात् मनुष्य प्रयत्न करता रहेगा तो मनसा, वाचा, कर्मणा किसी को दुःख न देने वाली भावना पुष्ट होती रहेगी तो शनैः शनैः वह अहिंसक हो ही जायेगा। किन्तु जिस समय मन में गुणधर्म वर्तमान होगा तो गुणवृत्तिविरोध होने के कारण दूसरे को दबाने व कुचलने वाले भाव जिनमें हिंसा वृत्ति ही प्रधान रहेगी तो ऐसी स्थिति में साधक अहिंसक किस प्रकार बन पायेगा ?

उत्तर—हाँ, पुत्र तुम्हारी यह बात तो बिल्कुल ठीक ही है यह हिंसा साधना साध्यात्मक है ही। इसके अतिरिक्त जो तुम चाह रहे हो कि योगी के मन में हिंसात्मक भावों का बिल्कुल अभाव ही हो जावे तो यह तो तभी हो सकता है जब योगी सम्प्रज्ञात योग की पराकाष्ठा को पहुँच जाये और वह यह देखने लगे कि प्राणीमात्र के अन्दर वहस्वयं ही आभाषित हो रहा है और प्राणीमात्र में जो स्पन्दन क्रिया है वह उसकी अपनी ही है। ऐसी स्थिति में जब कि वह बिल्कुल एकला अर्थात् अभिन्नता देखता है तब वह सारे संसार के प्राणियों को अपने में तथा सारे संसार के प्राणियों में अपने आपको देखता है। इस स्थिति में रागद्वेष, दुख शोक, मोह आदि से दूर होकर सर्वत्र एकता ही एकता का दर्शन करता है।

तत्र कामोहः कःशोकः, एकत्वननु पश्यतः।

निश्चय यही स्थिति पूर्णता की होती है। इसमें पहुँचकर मनुष्य राग द्वेष, आदि से परे हो जाने के कारण किसी से भी विरोध बुद्धि नहीं रखता है और अपने ही आत्मभूत सब को जानकर सबसे प्रेम करता है, हिंसा की भावना पूर्णरूपेण नष्ट हो जाया करती है, वस्तुतः यही अहिंसा की पराकाष्ठा कहलाती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! यह तो बिल्कुल ठीक है ऐसी स्थिति में तो मनुष्य अहिंसक स्वतः ही हो जायेगा किन्तु एक साधारण साधक के अन्दर तो राग, द्वेष आदि के भाव आ ही सकते हैं। चाहे उसका मन कितना ही एकाग्र क्यों न हो, किन्तु यह स्वाभाविक सी वस्तु है कि अपने मन के विपरीत भावों को देखता है तो ईर्ष्या, द्वेष आदि स्वाभाविक बनते ही हैं उसका निराकरण कैसे हो सकेगा ?

उत्तर—हे पुत्र! तुम बात तो ठीक कह रहे हो, किन्तु हम यह बात तुम्हें पहले समझा चुके हैं कि ऐसी स्थिति में साधक को अपने मन बुद्धि और शरीर पर नियन्त्रण रखना चाहिये अन्यथा एक एकाग्र मन वाले साधक द्वारा तो दूसरों का बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। इसी लिए तो योगाभ्यासियों को एकान्त सेवन की आज्ञा दी गई है। भगवान श्रीकृष्ण का भी इस प्रकार का आदेश है—

निर्मानमोह जितसङ्गदोषा-

अध्यात्मनित्याविनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञ-
गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।

अर्थात् जो साधक मान–मोह से रहित होकर एवं रागद्वेष आदि के संगदोषों से बचकर केअपनी मानस कामना पर पूरा अधिकार प्राप्त करके तथा सुख–दुख संज्ञक द्वन्द्वों से छूट कर ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं वही उस अव्यय पद को प्राप्त किया करते हैं अन्यथा राग द्वेष आदि के द्वारा तो मनुष्य का पतन हो हीजाता है और विशेषतः अध्यात्म प्रधान व्यक्ति को तो सदा सर्वदा शुभसंकल्पवालाही होना चाहिये। यदि अध्यात्म प्रधान व्यक्ति के मन में किसी के प्रति द्वेष वश कुसंकल्प रहते हैं तो दूसरे का तो अनिष्ट अवश्य ही हो सकता है और यह इतना बड़ा अनिष्ट हो सकता है कि जितना संसार लड़ाई झगड़े एवं वाद विवाद आदि में भी न हो पाये। मानस हिंसा इसी से बहुत ही भयानक और अनिष्ट कर होती है इससे दो प्रकार की हानि होती है।(1) योगी जिसके प्रति अशुभ संकल्प रखेगा उसका अनिष्ट तो होगा ही किन्तु उस योगी का अपना भी अनिष्ट होगा क्योंकि उसकी अपनी संग्रहीत शक्ति का बिना ही किसी विशेष कारण के निष्कासन हो जायेगा जो योगी की एकअनुपम निधि होती है वह चली जाती है। साथ ही दूसरे का अनिष्ट करने की भावना रखने से योगी अपने सिर पर पुण्यों की अपेक्षा पाप बढ़ा लेता है। योगज्ञान होता तो है सद्गति प्राप्ति के लिये किन्तु इसप्रकार के अनिष्ट मानस भावों में लगने से योगी सद्गति भाजन नहीं हो पाता, प्रत्युत उत्थान की अपेक्षा पतनकी ओर चला जाता है। इस लिये साधक को चाहिये कि अपने आप पर पूरा नियंत्रण रखे और राग–द्वेष आदि की अग्निसे अपने आपको जागरूक रह कर बचाये रहे।

प्रश्न—हे गुरुदेव! क्या सचमुच यदि अध्यात्म–प्रधान व्यक्ति किसी के प्रति अनिष्ट भावना रखता है तो उसका अनिष्ट हो ही जाता है ? क्या आपने कोई ऐसी घटना देखी है जिसमेंकिसी का इसप्रकार का अनिष्ट हुआ हो ? यदि देखी है तो कृपा करके मुझे बतला दीजिये जिससे कि मेरे मन के संदेहों की निवृत्ति भी साथ–साथ होती चले।

उत्तर—हम तो इस प्रकारकी बहुत सी घटनायें जानते हैं जिनमें अध्यात्म प्रधान व्यक्तियों के शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के संकल्पों का इष्ट अनिष्टता में परणित होता रहा है। तुम्हारे कथन को सुनकर हमेंएक आँखों देखी घटना याद आ रही है जो बहुत ही विलक्षणता के साथ घटित हुई थी। और यह सम्बन्धित है आनन्दकन्द परम कृपा निधान श्री प्रभुजी योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज के चरणों में घटित हुए जीवन से। श्री श्रभुजी के चरण–कमलों में एक ब्रह्मचारी निवास करतेथे जो श्री प्रभुजी के बहुत ही कृपापात्र बच्चे थे। वह अमृतसर में किसी स्थान पर अध्ययन करते थे। उनका एक साथी जो उनका एक प्रकार का मित्र भी था, उसके साथ उसका कुछ पारस्परिक वाद–विवाद होगया और उस वाद–विवाद के कारण इन दोनों के मन में मानस संघर्ष चलने लगा। श्री ब्रह्मचारी जी के साथी लड़के ने ब्रह्मचारी की अनुपस्थिति में उनकी एक पुस्तकों का ट्रंक पूरा भरा हुआ चुरा लिया। जिस ट्रंक में सांख्य योग,न्याय, मीमांसा आदि आदि योग–दर्शन थे एवं अन्य वेद–वेदान्त आदि

के बड़े–बड़े ग्रन्थ थे। ब्रह्मचारी जी को उनके चुराये जाने पर बहुत बड़ा मानसक्षोभ हुआऔर उस लड़के के प्रति बदला लेने की भावना उनके मन में बनी रहने लगी। ब्रह्मचारी जी अच्छे योगाभ्यासी थे। जब भीवे ध्यान में बैठते तब ही वे भगवान शिव के स्वरूप में लीन हो जाया करते थे।

प्रश्न—हे गुरुदेव लीनता किसको कहते है और वे ब्रह्मचारी भगवान शिव के स्वरूप में लीन कैसे हो जाते थे ?

उत्तर—हे पुत्र! देखो लीनता का अर्थ है कि इष्टदेव के स्वरूप में स्वरूप, मन में मन बुद्धि में बुद्धि, चित्त में चित्त और अहंकार में अहंकार मिला देने से साधक की बुद्धि तदाकार हो जाया करती है।

प्रश्न—हे गुरुदेव तदाकारकारिता तो और भी कठिन शब्द है मुझे तो बिलकुल खोल के स्पष्ट रूप से समझाइये जिससे मैं भली प्रकार समझ जाऊँ कि तदाकार क्या होता है ?

उत्तर—हे पुत्र ! देखो तदाकार का अर्थ यह है कि जब साधक अपने मन बुद्धि प्राणों को अपने इष्टदेव के स्वरूप में विलय कर देता है तो उसको यह अनुभव होने लगता है कि मैं स्वयं शिव ही हूँ। ऐसी अवस्था में उस साधक के मन में जो भी शुभाशुभ संकल्प बनते हैं वे उसके अपने नहीं होते प्रत्युत स्वयं भगवान शिव के होते हैं। ऐसी स्थिति में किसी दूसरे का अनिष्ट हो जाना स्वाभाविक ही हो जाता है।

प्रश्न—हाँ तो गुरुदेव आप उस ब्रह्मचारी की ओर उसके मित्र के पारस्परिक वाद विवाद की बात कर रहे थे फिर क्या हुआ आगे ?

उत्तर—हाँ पुत्र,उसके बाद वे ब्रह्मचारी जी जब भी ध्यान में बैठते थे और भगवान शिव के स्वरूप में ज्यों ही लय होते थे त्यों ही वह धर्मभानु नाम का लड़का भूतपूर्व मित्र सामनेआ जाता था और उसके सामने आते ही भगवान शिव स्वरूप स्थिति होने के कारण ब्रह्मचारी जी को तीसरा नेत्र खुलने को होजाता तब ही उनकाध्यान हट जाता था वह सब ध्यान की स्थिति उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में निवेदन की और कहा तो श्रीआनन्दकन्द श्री प्रभुजी ने उत्तर दिया कि बेटा तुम आठ रोज बिल्कुल ध्यान में मत बैठो अन्यथा तुम्हारे इस मित्र का अवश्य अनिष्ट हो जायेगा उस ब्रह्मचारी जी ने अपने गुरुदेव आनन्दकन्द प्रभुजी की आज्ञा मानकर आठ दिन को अभ्यास छोड़ दिया किन्तु मन में उस अपने मित्र लड़के के प्रति अशुभ संकल्प बने ही रहे। और साथ ही आठ दिन ध्यानाभ्यास में न बैठने का मन में प्रति क्षोभ भी बना रहा। वे यह सोचते रहे कि यह लड़कामेरा अच्छा दुश्मन बना कि जिसके कारण मेरा ध्यानाभ्यास भी हटा दिया गया। मेरे बड़े अशुभकर्म रहे जो ऐसे दुष्ट का सम्पर्क मिला। वह मन ही मन कहने लगा। गोस्वामी तुलसीदास जी ने बिल्कुल सत्य कहा है कि—

दुष्ट संग जनि देई विधाता।

या ते भला नरक का वासा।।

इस मित्र ने तो मेरी बहुत दुर्दशा कर दी। मेरा ध्यानाभ्यास छूट गया और मेरे अच्छे–अच्छे ग्रन्थों का जिनका संग्रह मैंने बहुत ही कठिनता से किया थावह सब भीचुरा लिया।

ब्रह्मचारी जी इसी दुःख से बहुत दुखी रहते थे। आठ दिन निकल जाने के बाद उन्होंने एक दिन प्रभुजी के चरणारविन्दों में प्रार्थना की कि हे प्रभुजी आठ दिन हो गये, मेरा ध्यानाभ्यास छूट गया है अब क्या आज्ञा है क्या मैं अपने पूर्व ध्यानाभ्यास का आरम्भ करूँ। ब्रह्मचारी जी ने यह बात ऐसे समय में पूछी जब कि श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में अधिक भीड़ की उपस्थिति थी। श्रीआनन्दकन्द प्रभुजी ने उस भीड़ ही में ही उत्तर दे दिया कि हाँ बेटा काफी दिन हुए तुम्हारा अभ्यास छूट गया है अब तुम अपने अभ्यास में बैठ जाया करो। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी की आज्ञा प्राप्तकरके जब वे ब्रह्मचारी ध्यान में बैठे तब चिन्तनमात्र से ही भगवान शिव के स्वरूप में लय हो गये और लीनता प्राप्त हो जाने के बाद वही लड़का बड़े गन्दे अभिनय के साथ उनके सामने आ गया जिसको देख करके ब्रह्मचारी के मन में और भी अधिक उद्वेग हो गया। बहुत दिन के बाद ब्रह्मचारी समाधि में बैठ पाये थे इसलिये एकाग्रता भी बहुत अधिक वेग से हुई जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने देखा कि उनके भ्रूमध्य से एक तीसरे नेत्र का उद्गम हुआ और उस नेत्र से चिनगारी निकलकर उनके उस साथी पर जा पड़ी। और चिनगारी के पड़ते ही उनको दिखलायी दिया कि वह लड़का बहुत तिलमिला उठा है। उसने अपने कपड़े सब फा डालें और पुस्तकों काजो ट्रंक उसने चुराया था उस ट्रंक से वे सब पुस्तकेंनिकालकर फाड़ डाली एवं आग लगा ली। उस लड़के ने उन पुस्तकों के साथ अपनी अन्य पुस्तकें जो उसके अध्ययन की थीं वह भी जला दीं एवं साथ ही अपने कपड़े और बिस्तर आदि भी जला दिये हैं। यह सारी की सारी ज्यों की त्यों घटना ब्रह्मचारी जी ने ध्यान में देख ली। और श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में जाकर निवेदन किया कि हे प्रभो! आज तो मेरे ध्यान में इस प्रकार की घटना घट गयी, पता नहीं यह क्या कैसे हुआ ? श्री प्रभुजी उसकी इस बात को सुनकर बहुत ही नाराज हुये और कहा कि ठीक है तुम लोग इस प्रकार से लोगों का अनिष्ट किया करो और हम तुम्हारे किये हुए पापों को भोगते रहा करेंगे। श्री प्रभुजी ने उस ही समय हम लोगों को आज्ञा दी कि जाओ देखो जाकर के उस लड़के की क्या हालत है। जब हम लोगों ने उस ब्रह्मचारी के मित्र लड़के के स्थान पर जाकर उस की हालत देखी तो वह वस्तुतः पागल हो गया था और उसने अपनी पुस्तकों का वह ट्रंक और घर के सब वस्त्र स्वयं आग लगा कर जला दिये थे। आसपास के लोगों ने उस को रस्सियों से बांधा हुआ था और उस पागलखाना ले जा रहे थे। तब हम लोगों ने उसको नासिकासे जबरदस्ती दुग्धपानक कराया और उसके सिर में मलाई आदि की मालिश कराई व अन्यान्य यौगिक उपचार करायें तब वह ठीक तो हो गया किन्तु क्षति उसे बहुत पहुँच गयी थी।

यह हुआ एक योगी की मानसी हिंसा का परिणाम, यदि एक योगी मन की एकाग्रता के समय में किसी के प्रति अनिष्ट भावना रखता है तो उसकी एकाग्रता की शक्ति से उसका अन्ष्टि होना स्वाभाविक ही हो आता है। इसलिये साधक को चाहिये कि वह यत्वाक, यत्काय और यत्मानसा रहे अर्थात् साधक को अपे मन वाणी एवं काया पर पूरा-पूरा नियन्त्रण रखना चाहिये क्योंकि उस काम न एकाग्र है, गोली से भरी हुई बन्दूक के सामन है यदि बन्दूक चल गयी तो दूसरे का घात कर ही डालेगी, इसलिए अध्यात्म-प्रदान योगी को चाहिये कि वह अपने मन, काया वाणी पर पूरा-पूरा नियंत्रण रखे। और किसी का भी अनिष्ट न होने दे। तभी वह शक्ति का केन्द्र एवं सर्व समर्थ बन सकेगा। अन्यथा इन अन्तराओं के कारण जैसे का तैसा रह

सकता है।

प्रश्न—हे गुरुदेव! वह ब्रह्मचारी आठ दिन के बाद अभ्यास में बैठे तब एकाएक ऐसा क्यों हो गया, पहले जब वे अभ्यास करते रहते थे तब तो ऐसा नहीं होता था अब ऐसा क्यों हो गया ? कृपाकर यह बात भी मुझे समझा दीजिये ताकि मैंभी सावधान रह सकूँ ?

उत्तर—हे पुत्र सुनो! वह ब्रह्मचारी आठ रोज तक अभ्यासमें नहीं बैठा उसकी आत्मशक्ति काप्रवाह इतने दिन तक रुका रहा और मन में उद्वेग बढ़ता रहा। शक्ति का प्रवाह तो मन में चला ही रहा था। इसलिए वह शक्ति मन में वेग के साथ संग्रहीत होती रही, और बड़े ही वेग के साथ उसका उद्वेग हुआइसलियेवह उस लड़केका अनिष्ट का कारणबन गयी। यहबात इस प्रकार की हुई जैसे कोई कृषक चलते प्रवाह वाली पानी कीनाली को मिट्टी का बांध लगा कर ोक देता है उस नाली में पानी काजब बहुत अधिक संग्रह हो जाता है तो इकट्ठे हुए जल का वेग उसबांध को तोड़डालता है और जल बहुत हीतीव्रवेग के साथ आगे कीओर निकल जाता है। इसी प्रकार उस ब्रह्मचारी के मन में शक्ति का प्रवाह तो प्रवाहित था ही आठ दिन उसका संग्रह और बढ़तारहा इस कारण यह वही भरी हुई बन्दूक वाली बात जैसी बन गयी। इसलिये साधक को चाहिये कि ह अपवने मन व वाणी, पर पूरा—पूरा नियन्त्रण कर पाने का प्रयास करता रहें।

शिष्य—हे गुरुदेव! आपने मुझ पर बहुत अधिक अनुग्रह किया अहिंसा के सिद्धान्तों को मुझे भली प्रकार से समझा दिया। अब मैं अपने अभ्यास काल में तो बिल्कुल ही सावधान रहूँगा—ऐसा मैं व्रत आपकी उपस्थिति में ले रहा हूँ।

आत्म विश्वास अर्थात् स्वयं अपने में विश्वास करना एक कला है जो निरन्तर के अभ्यास से प्राप्त होती है। आत्म विश्वास से परिपूरित व्यक्तित्व स्वयं को दूसरों की दृष्टि में अधिक अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है। उठने—बैठने, चाल—ढाल, बोलचाल, मुस्कराने, कार्य—कलाप, चिन्तन—मनन में प्रतिक्षण जागरूक रहने तथा स्वच्छता अपनाने से आत्म विश्वास की उपलब्धि होती है। यही सफल जीवन की कुंजी है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

दुर्लभ दर्शन

डा. रवीन्द्र कुमार जौहरी लखनऊ

व्यक्ति के जीवन में कभी–कभी ऐसी अलौकिक घटना घटित होती है जैसे सिद्ध महात्माओं के अनायास दर्शन जिसके फलस्वरूप उसका जीवन धन्य हो जाता है और उसके जीवन के क्रिया कलाप ही बदल जाते हैं।

ऐसी ही घटना सन् 1954 के अक्टूबर माह में उन करूणासागर की कृपा से घटित हुई। उस समय मैं इंटरमीडिएट द्वितीय वर्ष का छात्र था और अपने कॉलेज– बलवंत राजपूत कॉलेज, आगरा की हॉकी टीम में खेलता था। रोज शाम को अभ्यास या मैच खेलने के निमित्त कॉलेज जाया करता था। एक दिन मैच नहीं हुआ दूसरी टीम खेलने नहीं आयी हमारी टीम को 'वॉकओवर' मिल गया। सभी लोग थोड़ा सा खेलकर खेल के मैदान से चले गये, मैं तीन चार अपने मित्र खिलाड़ियों के साथ कॉलेज के आडिटोरियम में, जहाँ किन्हीं महात्मा जी का प्रवचन चल रहा था, पीछे की सीट पर आकर बैठ गया और दूसरे दिन होने वाले मैच के बारे में बहुत ही धीमी आवाज में विचार विमर्श करने लगा– तभी प्रवचन दे रहे महात्मा जी ने उच्च स्वर में कहा कि आज भी यदि किसी को सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हों तो यहाँ से थोड़ी ही दूर स्थित एत्मादपुर में कर सकता है। यह बात उन्होंने बड़े उच्च स्वर में व बहुत ही दृढ़ विश्वास से कही, हो सकता है उन्होंने 'श्री सिद्ध गुफा' का भी नाम लिया हो लेकिन मैं उसे सुन और समझ नहीं पाया।

हमारे घर में नित्य भगवान का आरती पूजन होता था और पिताजी स्व. डा. बी. पी. जौहरी अक्सर महात्माओं व ब्राह्मणों को घर लाकर बहुत सम्मान से भोजन आदि करवाते रहते थे। उन्हीं संस्कारों वश उस दिन जब उन महात्मा जी के मुख से किन्हीं 'सिद्ध महात्मा' के इतने नजदीक होने के विषय में सुना तो उनके दर्शन की अभिलाषा सीधी मन में उतर गयी और मन किसी प्रकार उनके दर्शनों के लिए व्यग्र रहने लगा। घर में सबसे छोटा और कम अवस्था (16 वर्ष) का होने के नाते इतनी दूर अकेले जाने की अनुमति मिलना असंभव था, इसलिये मैंने निर्णय किया कि मैं टूंडला से आने वाले रेलवे कर्मचारियों के सम्बंधी अपने सहपाठियों के साथ दर्शन करने चला जाऊ और दो घंटे बाद उधर से आगरा आने वाली गाड़ी से वापस आ जाऊँगा और ये सब मेरे खेल अभ्यास के समय में ही हो जायेगा घर पर किसी को पता भी नहीं लगेगा।

इसी योजना के तहत एक शाम को मैं अपने कुछ सहपाठियों के साथ एत्मादपुर रेलवे स्टेशन पहुँच गया और अपने साथियों के साथ स्टेशन मास्टर कक्ष में स्टेशन मास्टर सा., से

पूछा कि यहाँ कोई सिद्ध महात्मा रहते हैं क्या वे उनके विषय में जानते हैं? उन्होंने खेल की यूनीफार्म पहने बड़े कौतुहल से मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर पूछा '' क्यों पढ़न में मन नाय लगत का? घरे जाओ और पढ़वे में मन लगाओ।'' उनकी डाँट सुनकर हम तीनों चुपचाप उनके कक्ष से आकर गाड़ी में बैठ गये। वो वह जमाना था जब बड़ों का इतना आदर सम्मान होता था कि कोई भी बड़ा किसी अपरिचित छोटे को गलत काम करते देखकर डाँट सकता था और छोटों की हिम्मत पलटकर जवाब देने की नहीं होती थी।

घर लौटकर मन में बड़ा क्षोभ सा बना रहा जैसे कोई चीज खो गई हो और मिल न रही हो। कई दिन इसी उधेड़ बुन में निकल गये और एक दिन फिर मैं कुछ अन्य साथिओं के साथ एत्मादपुर के लिये ट्रेन से चल पड़ा। एक बोगी में हम 4–5 लड़के ही बैठे थे, कदाचित छलेसर स्टेशन निकल जाने के बाद मैंने देखा कि किनारे वाली सीट पर एक बहुत तेजस्वी विशालकाय जटाजूट महात्माजी विराजमान हैं जिनके हाथ में एक लम्बा सा चिमटा है और वे बीच वाली सीट पर बैठे हुये मुझे देख रहे हैं।

कहानियों में माँ अक्सर डराया करती थी कि बाबा पकड़कर ले जाते हैं उन्हीं कथाओं से मन में जटाजूट बाबाओं के प्रति एक डर सा बैठ गया था – जो उन बाबाजी को अपनी ओर निहारते देखकर और प्रबल हो उठा– कहीं पकड़ न ले जायें। वे मुझे देख रहे थे और मैं जानबूझकर उन्हें कनखियों से देखते हुये अपने को प्रकटरूप से उन्हें न देखकर उन्हीं की सीट पर सामने बैठे अपने साथियों से बातें करने का अभिनय करने लगा। कुछ देर में वे मेरे और नजदीक सामने की ओर खिसक आये और उन्होंने पूछा 'तुम लोग कहाँ जा रहे हो'। उनके यों पूछने पर मैं और डर गया कि ये तो जरूर पकड़ने वाले बाबा ही हो सकते हैं जो गन्तव्य भी पूछ रहे हैं। मैंने झूठ बोल दिया 'हम लोग टूँडला जा रहे हैं। इस पर उनके चेहरे पर एक मुस्कान फैल गई जो आज भी मुझे स्पष्ट याद है और उन्होंने कहा –'यदि सिद्ध महात्मा के दर्शन करने हों तो एत्मादपुर के स्टेशन मास्टर के पास जाना वे तुम्हें उनके पास ले जायेंगे।' ये बात खूब ध्यान से मैंने सुनी लेकिन भयवश उन्हें कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। इतने में कदाचित स्टेशन आने के पहिले पटरी बदलने आदि पर जो आवाजें होती हैं होने लगी, मेरे साथी भी एत्मादपुर आ रहा है ऐसा कहकर चैतन्य हो गये। मैंने देखा वे महात्माजी भी उठकर खड़े हो गये और पीछे के दरवाजे की ओर बढ़ गये– एक पल को लगा स्वयं भगवान शंकर ही जा रहे हों लेकिन भयवश मैंने देखकर भी उधर न देखने की चेष्टा की और सोचने लगा कि शायद बाबाजी बिना टिकिट थे इसीलिये पीछे के दरवाजे से उतरने चले गये। गाड़ी रुकने के पहिले कौतुहलवश मैंने मुड़कर देखा तो वे अन्तरध्यान हो चुके थे– मेरे मन ने सोचा बिना टिकिट होने के कारण वे शायद चलती गाड़ी से उतर गये।

एत्मादपुर स्टेशन आने पर मैं अपने साथियों के साथ स्टेशन मास्टर कक्ष में पहुंचा, देखा वे ही स्टेशन मास्टर सा. टिकिट बाँट रहे हैं, उन्हें देखकर व उनकी लगायी डाँट को याद करके मैं उलटे पाव ही लौटने लगा– तब उन्होंने पीछे मुड़कर पूछा –'ठहरो क्या बात है।'' मैंने

घबराकर कहा– आप तो सिद्ध महात्माजी को जानते ही नहीं है।

उन्होंने कहा, अरे! सिद्ध गुफा वाले बाबाजी?

अनायास ही मेरे मुख से निकल गया– हाँ हाँ वही। स्टेशन मास्टर सा. बोले, बैठ जाओ, गाड़ी निकाल दूँ, फिर तुम्हें ले चलूगा।

मैं बैठ गया, मेरे साथी ट्रेन से टूँडला चले गये। थोड़ी देर में अपना काम निपटाकर स्टेशन मास्टर सा. अपनी साइकिल के कैरियर पर मुझे बिठाकर कंकड़ों से बनी धूलधसरित सड़क से मुझे 5 मील के लगभग एत्मादपुर लाये और फिर कच्ची पगडंडी पर बागों के बीच से पैदल चलकर हम लोग एक बाग में पहुँचे जहाँ एक कच्चा कमरा बना था और पास में ही एक छप्पर वाला कमरा था। पेड़ के नीचे एक चारपाई बिछी थी उसके पास ही एक बोरे पर दो व्यक्ति बैठे थे। स्टेशन मास्टर सा. दूसरे बोरे पर बैठ गये, मैं भी बैठ गया।

थोड़ी देर में एक स्वस्थ शरीर वाले तेजस्वी पुरुष हाथ में पीतल की बाल्टी लिये हुये आये उनके साथ एक नवयुवक भी था। उन्हें देखकर स्टेशन मास्टर सा. ने अभिवादन किया, मैं चुपचाप आने वाले महात्मा जी जो गेरुआवस्त्र धारणकिये हों, बाल व दाढ़ी रखाये हों की कल्पना कर में मौन बैठा रहा। आने वाले तेजस्वी पुरुष चारपाई पर बैठकर पास बैठे लोगों से बात करने लगे। तभी मेरी दृष्टि अनायास ही कमरे में रखे दाढ़ी वाले बाबाजी के चित्र पर जाकर टिक गई। मुझे अचरज हुआ, यह तो उन्हीं महापुरुष का चित्र था जो मुझे ट्रेन में मिले थे। मुझे इस प्रकार देखते हुये देखकर, उन्होंने पूछा, लल्ला! क्या देख रहे हो। मेरे मुँह से अनायास निकला– वे बाबाजी कब आयगे? उन्होंने उस चित्र की ओर देखकर कहा– लल्ला, उन श्री प्रभुजी को शरीर छोड़े तो समय हो गया। मैंने आश्चर्य से कहा, मुझे तो अभी ट्रेन में मिले थे। अब वे तेजस्वी पुरुष उठकर सीधे बैठ गये और मुझे ऐसी दृष्टि से देखा जो मेरे आरपार निकल गई – फिर बहुत ही गंभीर आवाज में बोले –"हाँ! वे अपने बच्चों को इसी प्रकार दर्शन देते रहते हैं उनका मार्गदर्शन करते हैं।"

अब मैंने देखा उनके शरीर से विचित्र आभा निकल रही थी– मैं अपने आप उनके चरणों पर झुक गया और गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने मुझे हृदय से लगा लिया।

स्थिरता निर्विकल्प समाधी है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मन:क्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नही है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये, यह आवश्यक नहीं।

प्रभु ! पार उतार मुझे

प्रभु रामलाल, दयाल, कृपा करके,
भवसागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे, ये संसार मुझे।।
सुध बुध न रहे इस तन की,
जग का न कोई बन्धन हो।
जिस तरफ जाए ये नजर मेरी,
बस तेय हो दर्शन, तेरा वन्दन हो।।
सब कुछ भुलूं, तेरी याद में झूँलू,
मिल जाए मस्ती की इक धार मुझे।
तेरे प्यार———
जप–तप में मन लीन रहे,
चरणों में नित ध्यान रहे।
डूबार हूँ नित 'चन्द्रानन्द' में,
बस सिद्ध गुफा का भान रहे।।
योग कमाई दिन दूनी बढ़े।
डुबा न सके कोई मझधार मुझे।
तेरे प्यार में———
या जिस हाल में भी तू रखे,
हो वह सब स्वीकार मुझे।
जग में न चाहत हो कुछ भी,
हो बस, तब दर्शन की दरकार मुझे।।
तेरा गुण नित गाते–गाते,
पड़े सुनाई मधुर झनकार मुझे
प्रभु रामलाल दयाल, कृपा करके,
भव सागर से पार उतार मुझे।
तेरे प्यार में इतना खो जाऊँ,
पागल समझे ये संसार मुझे।।

आर. बी. श्रीवास्तव
'चन्द्रानन्द',
ग्वालियर

चतुष्पदियाँ

श्री गिरिमोहन 'गुरु', ब्यावर (मध्य प्रदेश)

ज्ञान के बल पर सदा विज्ञान ने कौतुक दिखाये।
ज्ञान के बल से सदा अज्ञान को हम जीत पाये।।
ज्ञान का बल था फिरंगी शासकों ने हार मानी।
ज्ञान के बल पर सदा संसार के हम गुरु कहाये।।

(2)

जो तिमिर में ज्ञान का आलोक दिखलाता रहा है।
मृत्यु से अमृत्व का सद्मार्ग सिखलाता रहा है।।
जो असत से सत्य की ही ओर ले जाता रहा है।
वह मनुज आचार्य गुरु हमें भाता रहा है।।

(3)

जो हमें मानव जीना सिखाता वह गुरु है।
जो हमें देवत्व के दर्शन कराता वह गुरु है।।
जो हमारी जिन्दगी को मोड़ता है ज्ञान बल से।
मरुस्थल में ज्ञान की गङ्गा बहाता वह गुरु है।।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 **MAY 2022**

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री

बुद्धिर्यस्य बलतस्य निर्बुद्धेश्च कुतोबलम् - चाणक्य

संसार में जिसके पास बुद्धि है वही बलवान है क्योंकि बुद्धि के बल पर ही मनुष्य, जड़-चेतन सभी पर शासन करता है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य म. (डॉ.) रामलाल शर्मा